त्रैमासिक • अप्रैल-जून 2006 • दस रुपये

मुक्तिकामी छात्रों–नौजवानों की त्रैमासिक पत्रिका

आह्वान कैम्पस टाइम्स

विशेष लेख

आरक्षण : पक्ष, विपक्ष और तीसरा पक्ष

महाबली की किरकिरी

सट्टेबाज़ और जुआरी पूँजीवाद

मार्क ट्वेन की कहानी 'नन्ही बेस्सी'

छात्रों के प्रति

● बेर्टोल्ट ब्रेष्ट

1.
तुम वहाँ बैठते हो
पढ़ने के लिए।
और कितना खून बहा था
कि तुम वहाँ बैठ सको।
क्या ऐसी कहानियाँ तुम्हें बोर करती हैं?
लेकिन मत भूलो कि पहले
दूसरे बैठते थे तुम्हारी जगह
जो बैठ जाते थे बाद में
जनता की छाती पर।
होश में आओ!

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट

2.
तुम्हारा विज्ञान व्यर्थ होगा, तुम्हारे लिए
और अध्ययन बाँझ, अगर पढ़ते रहे
बिना समर्पित किये, अपनी बुद्धि को
लड़ने के लिए
सारी मानवता के सारे शत्रुओं के विरुद्ध।

3.
मत भूलो,
कि आहत हुए थे तुम जैसे आदमी
कि पढ़ सको तुम यहाँ, न कि दूसरे कोई
और अब मत मूँदो अपनी आँखें, और
मत छोड़ो पढ़ाई
बल्कि पढ़ने के लिए पढ़ो
और पढ़ने की कोशिश करो
कि क्यों पढ़ना है?

आह्वान के बारे में कुछ महत्वपूर्ण विचारबिन्दु

➢ भारतीय क्रान्ति का रास्ता मेहनतकश वर्गों के नेतृत्व में साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी क्रान्ति का रास्ता है। यह नई समाजवादी क्रान्ति का रास्ता है। यह शहीदेआज़म भगतसिंह का रास्ता है। क्रान्ति ही नाउम्मीदों की उम्मीद है। रसातल के अन्धेरे में जीने वालों की ज़िन्दगी की रोशनी है। मृत्यु के अवसाद को तोड़ने वाले उत्सव का आह्लाद है। ''आह्वान'' इस तूफ़ान का मुक्त कण्ठ से आह्वान करता है। ''आह्वान'' इस तूफ़ान का आनन्द लेने के लिए सभी युवा तूफ़ानी पितरेल पक्षियों को न्यौता देता है।

➢ पूरा भारतीय समाज आज एक ज्वालामुखी के दहाने पर बैठा है। अब यह सच्चाई एकदम उजागर हो चुकी है कि रुग्ण-विकलांग, बूढ़ा-बौना भारतीय पूँजीवाद आम जनता को कुछ भी सकारात्मक नहीं दे सकता। मेहनतकशों की ज़िन्दगी को इसने लूटमार, उत्पीड़न-शोषण और असह्य पीड़ा-व्यथा के अन्धेरे रसातल में ढकेल दिया है। अथाह दुखों के सागर में ऐश्वर्य के द्वीप और विलासिता की मीनारें, संसद में पूँजीपतियों की दलाल चुनावी पार्टियों के बहसबाजों की धींगामुश्ती, विदेशी लुटेरों को लूट की खुली छूट, भ्रष्टाचार के नित-निरन्तर भंग होते कीर्तिमान, संवेदनाओं को कुंद करती विकृत-बीमार साम्राज्यवादी-पूँजीवादी संस्कृति का धीमा ज़हर, संचार माध्यमों पर पूँजी की सर्वग्रासी पकड़, दिवालिया अर्थतंत्र, नंगा राजनीतिक तंत्र, बिकता न्याय, बेतहाशा मँहगी होती जा रही निरर्थक अनुपयोगी-अवैज्ञानिक शिक्षा, मामूली चिकित्सा के अभाव में मरते लोग—यही आज का वह नारकीय सत्य है जिसे फिलहाल, हारी हुई मानसिकता के शिकार लोगों ने अपनी नियति मान लिया है। इसे बदलने का रास्ता क्रान्ति का रास्ता है। क्रान्ति कठिन है, क्रान्ति का रास्ता लम्बा है, ध्वंसकारी है, पर इसके बिना नये का निर्माण असम्भव है। यही आज का ठण्डा सत्य है—नंगा सत्य है—पर यही मुक्तिदायी सत्य है। यही 'आह्वान' का निर्भीक उद्घोष है।

इस अंक में

पाठक मंच 2

अपनी ओर से

आरक्षण : पक्ष, विपक्ष और तीसरा पक्ष 3

सामयिकी

वृद्धि दर 8 प्रतिशत, बेरोज़गारी दर 10 प्रतिशत 10

सट्टेबाज़ और जुआरी पूँजीवाद 16

गरीबों की दुहाई और अमीरों को मलाई 17

साहित्य

यंत्रणागृह (अर्न्स्ट टोलर) 22

नन्ही बेस्सी (मार्क ट्वेन) 33

विश्व पटल पर

महाबली की किरकिरी 8

लेकिन यह समय जीत के जश्न का नहीं... 13

अरब में फँसा अमेरिकी साम्राज्यवाद के रथ का चक्का 15

विरासत

...उस दिन भले लोगों की आँखों में हमारे लिए... 11

कठिनाइयों से रीता जीवन... 12

गतिविधि बुलेटिन

स्मृति संकल्प यात्रा और ज़्यादा उत्साह के साथ जारी 23

उत्तरी दिल्ली भगत सिंह के नारों से गूँजा 23

ग़ाज़ियाबाद में नौभास का कार्यक्रम 24

चन्द्रशेखर आज़ाद अमर रहेंगे हम सबके संकल्पों में 25

गोरखपुर में सघन जनसम्पर्क अभियान और गोष्ठियाँ 26

दिल्ली में नौ.भा.स. व जा.ना.मं. की गोष्ठी 26

नौ.भा.स. का जुझारू सड़क निर्माण आन्दोलन नये चरण में 27

पूर्वी उप्र व लखनऊ में स्मृति संकल्प यात्रा के तहत कार्यक्रम 28

पंजाब के विभिन्न हिस्सों में स्मृति संकल्प यात्रा के अभियान 30

लुधियाना में पंजाबी उपन्यास 'सुधार घर' पर विचार गोष्ठी 30

दिल्ली में नौभास का दो दिवसीय युवा रचनात्मकता शिविर 31

आह्वान
कैम्पस टाइम्स

मुक्तिकामी छात्रों-नौजवानों की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष 14 अंक 2 अप्रैल-जून 2006

सम्पादक मण्डल
कविता/अभिनव

सज्जा
रामबाबू

एक प्रति का मूल्य
दस रुपये
वार्षिक
चालीस रुपये
(डाक व्यय सहित 48 रुपये)

ईमेल : ahwancampustimes@gmail.com

सम्पादकीय कार्यालय : बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली फोन : (011) 65976788

स्वत्वाधिकारी आदेश सिंह द्वारा नौजवान कार्यालय, कल्याणपुर, गोरखपुर से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा आफसेट प्रेस, नखास, गोरखपुर से मुद्रित।

पाठक मंच

'आह्वान' एक हथियार है

'आह्वान कैम्पस टाइम्स' एक पत्रिका न हो होकर एक हथियार है। आह्वान के पिछले अंक में मार्क ट्वेन की दोनों कहानियाँ बहुत ही अच्छी लगीं। आगे भी इस तरह के साहित्य का इन्तज़ार रहेगा। भगतसिंह की वैचारिक विरासत के बारे में लिखा गया लेख वाकई आँखें खोल देने वाला था। इस तरह के लेखों को पर्चों की शक्ल में अलग से भी वितरित किया जाना चाहिए। राधामोहन गोकुलजी का लेख पढ़कर ही यह समझ में आ गया कि वह अपने समय के मूर्तिभंजक रहे होंगे। लेकिन सबसे अच्छा लगा भ्रष्टाचार पर आया सम्पादकीय। वाकई यह भ्रष्टाचार के तमाम सुधारवादी दृष्टिकोणों की धज्जियाँ उड़ाकर एक सही क्रान्तिकारी दृष्टि देता है।

रवीन्द्र कुमार, करावलनगर,
दिल्ली

इस संघर्ष में आपके साथ हूँ..

मैंने आह्वान की सदस्यता अभी-अभी ली है। कृपया पत्रिका को नियमित रखने का प्रयास करें। आपकी पत्रिका आह्वान कैम्पस टाइम्स आम जनता, खासकर छात्रों-नौजवानों को जागरूक करने और संघर्ष के लिए प्रयत्नशील है। इस संघर्ष में मैं आपके साथ हूँ। मुख्य काम इस सड़ी-गली व्यवस्था को उखाड़ फेंकना है और एक नये समाज की स्थापना के लिए मेहनतकश जनता को एकजुट करना है ताकि संघर्ष के रास्ते पर चलकर एक नये समाज का निर्माण किया जा सके।

क्रान्तिकारी अभिवादन के साथ,
दीवान कुण्डल, (जम्मू कश्मीर)

'आह्वान' ऊर्जा देता है..

क्रान्ति के पर्याय, मानवीय मूल्यों को समर्पित, संघर्ष ही जीवन के यथार्थ के सत्य को उद्‌बोधित करती 'आह्वान कैम्पस टाइम्स' से अभिभूत हूँ। आज की व्यवस्था की मानव-विरोधी नृशंसता के तथ्यों का उद्‌घाटन, इस पत्रिका के माध्यम से सोचने की एक नयी दिशा प्रदान करता है। इसका हर अंक पाठकों को एक मूल्यबोधि संस्कार देकर मानव विरोधी शक्तियों के खिलाफ़ सोचने को अवश्य मजबूर करता है।

मैं सोचता हूँ कि आपके इस वैचारिक आन्दोलन में अपनी ऊर्जा लगा पाता।

'आज की कविताएँ' कुछ कारण विशेष से बन्द है, लेकिन पुनः प्रकाशन की योजना बना रहा हूँ।

कुछ कविताएँ भेज रहा हूँ। अगर उपयोग कर पायें तो खुशी होगी।

मंगल कामनाओं के साथ,
भवदीय,
गिरिजा शंकर मोदी
सम्पादक-आज की कविताएँ

विद्रोह

अन्याय के ख़िलाफ़
लड़ते लोगों को
सीखचों में बन्द कर
पहरा देते सिपाहियों का
सिर भी कभी
शर्म से झुक जाएगा,
वर्दी से लिपटी देह की आत्मा भी
कभी न कभी एक दिन
अपनों के लिए
तड़पेगी की अवश्य,
लूटी गई रोटी को
फेंककर खिलाने का अहसास भी
कभी न कभी उसे होगा ही,
और जब उसकी समझ
पाएगी
इतिहास के पन्नों से आज तक
दमघोंटू समाज की अन्धेरी कोठरी में
तड़प दम तोड़ते
नर कंकालों के बीच
खुद को भी,
तो वह खोल देगा
अपनी वर्दी
खोल देगा जेल के सींखचे
और शामिल हो उनके काफिले में
जो आदमी की बात करता है,
बुलन्द करने लग जाएगा आवाज़
आज़ादी की, न्याय की, जीने की
पता नहीं
वह और कब तक भोगता रहेगा
रोटी के बदले गोली देती
नर संहारक व्यवस्था को।

गिरिजा शंकर मोदी
सम्पादक-आज की कविताएँ
'शब्द सदन'
सिकन्दरपुर (बरविग्घि)
मिरजानहाट, भागलपुर-812005
(बिहार)

अब सोचने की बारी हमारी है...

जो खा रहा है, वह बादाम-पिस्ता खा रहा है
जो जा रहा है वह पिसता जा रहा है।
वह आम इंसान
जिसके बल पर दुनिया चल रही है।
दुनिया उसे छल रही है।
जिसके मज़बूत कन्धों पर
दुनिया का बोझ टिका हुआ है।
वह चन्द स्वार्थी मुनाफ़ाखोरों के आगे झुका हुआ है।
और उसे दुनिया का बोझ बताया जा रहा है
दोस्तो, अब बारी है
सोचने की हमारी
फिर
क्यों न हम
एक ऐसे समाज के बारे में सोचें
जिसमें सभी काम करें
और सभी को मिले जीने का बराबर अधिकार।

वन्दना, सेक्टर-16, रोहिणी,
दिल्ली

"तुम नए महासागरों की खोज तब तब नहीं कर सकते जब तक तुममें किनारे को नज़रों से ओझल करने का साहस नहीं हो।"

— *अज्ञात*

आरक्षण : पक्ष, विपक्ष और तीसरा पक्ष

मानव संसाधन विकास मंत्री अर्जुन सिंह द्वारा मेडिकल, इंजीनियरिंग और मैनेजमेण्ट सहित सभी उच्च शिक्षण संस्थानों में पिछड़ी जातियों के लिए सत्ताइस प्रतिशत आरक्षण की घोषणा के साथ ही देश का युवा समुदाय काफ़ी हद तक परस्पर-विरोधी दो हिस्सों में बँट गया है। महँगाई, बेरोज़गारी, आम मेहनतकश जनता के लगातार छिनते अधिकारों, धनी-ग़रीब के बीच की लगातार बढ़ती खाई, लगातार बढ़ती देशी-विदेशी पूँजीवादी लूट-खसोट जैसे तमाम बुनियादी मसले, जो ज़्यादा से ज़्यादा ज्वलन्त होते जा रहे थे, एक बार फिर पीछे धकेल दिये गये हैं। आम जनता और विशेषकर उसके वे नौजवान बेटे-बेटियाँ ही जातिगत लाइन पर आपस में बँट गये हैं, जिनके कन्धों पर साम्राज्यवाद और पूँजीवाद से फ़ैसलाकुन संघर्ष छेड़कर जन-मुक्ति की नयी परियोजना को अमली जामा पहनाने की ऐतिहासिक ज़िम्मेदारी है।

बेशक़, जातिगत उत्पीड़न और भेदभाव का सवाल भारतीय समाज का एक सर्वाधिक बुनियादी और अहम सवाल है। शताब्दियों पुराने जातिगत पूर्वाग्रह और पार्थक्य आज भी अधिकांश आम भारतीय नागरिकों के संस्कारों में गहराई से रचे-बसे हैं। फ़र्क यह है कि कहीं इसकी नग्न-निरंकुश अभिव्यक्ति देखने को मिलती है तो कहीं इसका बारीक और "सुघड़" रूप सामने आता है। इसमें भी सन्देह नहीं कि दलित और कुछ पिछड़ी जातियाँ जातिगत अपमान और उत्पीड़न के अतिरिक्त, आबादी में अपने अनुपात के मुकाबले, सामाजिक-आर्थिक हैसियत में भी सवर्ण जातियों की तुलना में आज भी काफ़ी पीछे हैं। कुछ पिछड़ी जातियों ने आज़ादी के बाद के वर्षों मे, गाँवों में पूँजीवादी फार्मरों-कुलकों के रूप में अपनी स्थिति मज़बूत की है और पूँजीवादी चुनावी राजनीति में भी उनकी भागीदारी सशक्त हुई है, लेकिन शहरी रोज़गारों और स्वतंत्र बौद्धिक पेशों में वे आज भी काफी पीछे हैं। पूँजी की सर्वग्रासी मार ने सवर्ण जातियों की एक भारी आबादी को भी सर्वहारा, अर्द्धसर्वहारा और परेशानहाल आम निम्न मध्यवर्ग की कतारों में धकेल दिया है, लेकिन तस्वीर का दूसरा पहलू यह भी है कि औपनिवेशिक काल तक की अर्द्धसामन्ती सामाजिक सरंचना में जो दलित और पिछड़ी जातियाँ सबसे नीचे की परतों के रूप में पिस रही थीं, उनमें से अधिकांश आज के पूँजीवादी पद-सोपान-क्रम में भी सबसे नीचे के पायदानों पर खड़ी हैं। उन्हें "ऊपर उठाने" के तमाम सरकारी उपक्रमों ने दलित आबादी के एक अत्यन्त छोटे हिस्से को सरकारी नौकरियों की (उनमें भी ज़्यादातर छोटी नौकरियाँ) सुविधा दी है और इसके बदले गाँवों-शहरों में उजरती गुलामी का नारकीय जीवन बिताने वाली बहुसंख्यक दलित आबादी के प्रति आम ग़रीब एवं मध्यवर्गीय सवर्ण आबादी में पहले से ही मौजूद जातिगत पूर्वाग्रह, विग्रह एवं घृणा को नये सिरे से खाद-पानी देने का काम किया है।

पिछड़ी जातियों की स्थिति थोड़ी-सी भिन्न है। आज़ादी के बाद भारतीय खेती के पूँजीवादीकरण के साथ ही ज़मीन का मालिक बने किसानों के जिस तबके ने बाज़ार के लिए पैदा करके मुनाफ़ा कमाने वाले पूँजीवादी फार्मरों-भूस्वामियों-कुलकों के रूप में विकास किया, यदि उसकी जातिगत पृष्ठभूमि को देखा जाये तो पता चलेगा कि वह अधिकांशतः काश्तकारी करने वाली जाट, मराठा, रेड्डी, कम्मा, कुर्मी, सैंथवार, कोइरी, यादव आदि पिछड़ी जातियों से मिलकर बना था। अपनी बढ़ती आर्थिक शक्ति के हिसाब से इन जातियों के प्रभावी लोगों ने पूँजीवादी चुनावी राजनीति में भी अपनी भागीदारी बढ़ायी, कई राज्यों में अलग-अलग हदों तक द्विज जाति के धनिकों को सत्ता से विस्थापित भी किया तथा नये ग्रामीण परिदृश्य में दलितों के (जिनमें से अधिकांश खेत मज़दूर ही हैं) नये उत्पीड़क के रूप में सामने आये। लेकिन इस दिखायी पड़ने वाली सच्चाई के पीछे की यह मूल सच्चाई प्रायः नज़रों से ओझल कर दी जाती है कि भारत की हज़ारों पिछड़ी जातियों में से मुश्किल से दर्ज़न भर को

छोड़कर, अन्य की स्थिति आर्थिक-सामाजिक हैसियत की दृष्टि से लगभग दलितों जैसी, या उनसे कुछ ही ऊपर है। और पूँजीवादी फार्मरों-भूस्वामियों-कुलकों में जिन पिछड़ी जातियों की बहुलता है, उन पिछड़ी जातियों का भी 70-80 प्रतिशत हिस्सा आज निम्न मध्यवर्गीय किसान, ग्रामीण व शहरी निम्न मध्यवर्ग तथा सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा के रूप में ही ज़िन्दगी बसर कर रहा है। पूँजी की लगातार बढ़ती मार उन्हें उनकी जगह-ज़मीन से उजाड़कर गाँवों में, और उससे भी अधिक शहरों में, मज़दूरी और दफ़्तरी नौकरी-चाकरी की तलाश के लिए विवश कर रही है। और यह सब कुछ भूमण्डलीकरण के ऐसे दौर में हो रहा है जब चारों ओर "रोज़गारविहीन विकास" का बोलबाला है। नौकरियाँ लगातार घट रही हैं और बेरोज़गारी लगातार बढ़ रही है।

ऐसे समय में सत्ताधारी वर्ग जब नौकरियों या उच्च शिक्षा में आरक्षण का लुकमा फेंकते हैं तो पहले से नौकरियों पर आश्रित, मध्यवर्गीय, सवर्ण जातियों के छात्रों और बेरोज़गार युवाओं को लगता है कि आरक्षण की बैसाखी के सहारे दलित और पिछड़ी जातियाँ उनके रोज़गार के रहे-सहे अवसरों को भी छीन रही हैं। वे इस ज़मीनी हक़ीक़त को नहीं देख पाते कि वास्तव में रोज़गार के अवसर ही इतने कम हो गये हैं कि यदि आरक्षण को एकदम समाप्त कर दिया जाये तब भी सवर्ण जाति के सभी बेरोज़गारों को रोज़गार नहीं मिल पायेगा। इसी तरह दलित और पिछड़ी जाति के युवा यह नहीं देख पाते कि यदि आरक्षण के प्रतिशत को कुछ और बढ़ा दिया जाये और यदि वह ईमानदार और प्रभावी ढंग से लागू कर दिया जाये, तब भी दलित और पिछड़ी जातियों के पचास प्रतिशत बेरोज़गार युवाओं को भी रोज़गार नसीब न हो सकेगा। उनके लिए रोज़गार के जो थोड़े से नये अवसर उपलब्ध होंगे, उनका भी लाभ मुख्यतः मध्यवर्गीय बन चुके दलितों और आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक रूप से प्रभावशाली पिछड़ी जातियों के लोगों की एक अत्यन्त छोटी-सी आबादी के खाते में ही चला जायेगा तथा गाँवों-शहरों में सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा का जीवन बिताने वाली बहुसंख्यक आबादी को इससे कुछ भी हासिल नहीं होगा।

ज़रूरत इस बात की है कि सदियों पुराने जातिगत पूर्वाग्रहों और शासक वर्गों की कुटिल चालों का शिकार होने की बजाय इस देश का युवा समुदाय इन बुनियादी प्रश्नों पर विचार करे कि भारतीय समाज को गहराई से ग्रसे 'जाति के ज़हर' को जड़मूल से समाप्त करने का, जातिगत बँटवारे को समाप्त करने का तथा बर्बर जातिगत उत्पीड़न और घोर जातिगत अपमान से दलित एवं विभिन्न पिछड़ी जातियों की अन्तिम मुक्ति की परियोजना क्या होगी? ज़रूरत इस सवाल पर सोचने की है कि जातिगत भेदभाव और बँटवारे को भारतीय जनता की मुक्ति और एक समतामूलक समाज के निर्माण के ऐतिहासिक क्रान्तिकारी प्रोजेक्ट का बुनियादी और अविभाज्य अंग किस प्रकार बनाया जाये? इन्हीं बुनियादी सवालों के मद्देनज़र हम आरक्षण के पक्ष और विपक्ष में बँटे तर्कशील, ईमानदार, संवेदनशील छात्रों-नौजवानों से चन्द दो-टूक बातें करना चाहते हैं।

आरक्षण के विरोधियों से

उच्च शिक्षण संस्थानों में पिछड़ों को सत्ताईस प्रतिशत आरक्षण देने का प्रस्ताव जब सामने आया तो इसके विरुद्ध सर्वप्रमुख तर्क यह दिया गया कि इससे भारत में स्वास्थ्य सेवाओं का स्तर नीचे आ जायेगा, यह आम जनता के जीवन से खिलवाड़ होगा, इससे वैज्ञानिक शोध का स्तर प्रभावित होगा और देश की प्रगति प्रभावित होगी... वगैरह-वगैरह। लेकिन यह तो बताइये कि जिस "चिन्ता" के चलते आप योग्यता का यह तर्क गढ़ रहे हैं, उस "चिन्ता" के आधार पर तो आपको एन. आर.आई. कोटे के तहत और कैपिटेशन फीस के आधार पर मेडिकल और इंजीनियरिंग कालेजों में प्रवेश के बरसों पहले लागू फ़ैसले का भी विरोध करना चाहिए था? लेकिन इस मसले पर तो आपने चूँ भी नहीं किया! क्या अनिवासी भारतीयों और दस-दस लाख रुपये तक कैपिटेशन फीस दे सकने वाले देशी धन्ना सेठों की सभी औलादें प्रतिभाशाली ही पैदा होती हैं? इन संस्थानों में दाखिले के लिए धनिकों की जमात अपने कुलदीपकों की कोचिंग पर लाखों रुपये खर्च कर देती है। यदि आप इंसाफ़पसन्द हैं और योग्यता को लेकर चिन्तित हैं तो फिर आपने कभी सरकार से इस तरह की माँग क्यों नहीं की कि वह या तो ऐसे प्राइवेट कोचिंग संस्थानों पर रोक लगाकर सभी अभ्यर्थी छात्रों के लिए निःशुल्क या सस्ती कोचिंग की समान व्यवस्था लागू करे या फिर दलितों, अन्य पिछड़ी जातियों और वंचित तबकों के लिए अलग से निःशुल्क कोचिंग का प्रावधान करे ताकि कोई योग्य व्यक्ति महज़ आर्थिक-सामाजिक कारणों से इन संस्थानों में प्रवेश से वंचित न रह जाये! यदि आप वास्तव में इंजीनियरिंग, मेडिकल और वैज्ञानिक शोध के गिरते स्तर की आशंका और इन क्षेत्रों में अयोग्य लोगों के प्रवेश को लेकर चिन्तित हैं, तो आपने मेडिकल, इंजीनियरिंग, पैरामेडिकल, तकनीकी और उच्च शिक्षा के क्षेत्र में लगातार तेज़ होती जा रही निजीकरण की लहर का कभी विरोध क्यों नहीं किया, जिसके चलते शिक्षा मात्र व्यापार या पैसे का खेल होकर रह गयी है! लाख योग्यता हो, पैसे और पहुँच के अभाव में आगे बढ़ पाने की रही-सही सम्भावनाएँ भी लगातार सिकुड़ती जा रही हैं! क्या आप इसके विरोध में भी कभी शामिल हुए हैं?

अच्छा, तो आप देश की प्रगति को लेकर चिन्तित हैं! लेकिन यह तो बताइये, प्रति वर्ष हज़ारों डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक इस देश की आम जनता के ख़ून-पसीने से अर्जित संसाधनों से डिग्रियाँ हासिल करने के बाद, ज़्यादा से ज़्यादा पैसा पीटने के लिए अमेरिका और यूरोप की राह पकड़ लेते हैं! क्या आपने इस प्रवृत्ति का और इसे बढ़ावा देने वाली सरकारी नीतियों का कभी विरोध किया? यह तो आप जानते ही होंगे कि लाखों रुपये कैपिटेशन फीस और महँगी फीस चुकाने के बावजूद, एक डॉक्टर, इंजीनियर या वैज्ञानिक तैयार होने में अस्सी फीसदी से भी अधिक खर्च सरकारी होता है, जो आम जनता से परोक्ष करों के रूप में वसूली गयी धनराशि से आता है! तब क्या ऐसे लोगों को आप देशद्रोही या जनद्रोही मानते हैं जो आम जनता के बूते

पर विशेषज्ञता अर्जित करने के बाद, खुद डॉलर-पौण्ड बटोरने के लिए विदेश भाग जाते हैं और अपनी योग्यता से उन्हीं साम्राज्यवादियों की सेवा करते हैं जो सालाना हमारे देश से अरबों-खरबों रुपये मुनाफ़ा, रॉयल्टी और सूद के रूप में लूट ले जाते हैं। आप कहेंगे कि ऐसा इस देश में रोज़गार के अवसर और योग्यता की पूछ नहीं होने के कारण होता है! लेकिन तब आप सरकार की उन नीतियों का विरोध क्यों नहीं करते जो लगातार 'रोज़गारविहीन विकास' को बढ़ावा दे रही हैं? अगर आप न्यायशील हैं तो आप उस सामाजिक-राजनीतिक ढाँचे के विरोध में क्यों नहीं खड़े होते, जिसमें विकास के कार्यों और स्वास्थ्य सेवाओं के व्यापक विस्तार की ज़रूरत तथा हर प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों एवं योग्य लोगों की मौजूदगी के बावजूद डॉक्टरों-इंजीनियरों-वैज्ञानिकों तक को रोज़गार नहीं मिलता?

आप स्वास्थ्य सेवाओं का स्तर गिरने की आशंका से यदि बेहाल हैं तो इस बात के ख़िलाफ़ कभी आवाज़ क्यों नहीं उठाते कि सरकारी अस्पताल भ्रष्टाचार और दलाली के अड्डे बने हुए हैं, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर तैनात अधिकांश सरकारी डॉक्टर वहाँ जाने के बजाय प्राइवेट प्रैक्टिस करके पैसा कूटते हैं और मुफ़्त तनख़्वाह भी उठाते हैं तथा एम्स जैसे संस्थान और मेडिकल कालेज मुख्यतः वी.आई.पी. लोगों और धनपतियों की सेवा करते हैं। इस जर्जर व्यवस्था को सुधारने के बजाय सरकार स्वास्थ्य सेवाओं का भी अन्धाधुन्ध निजीकरण कर रही है। प्राइवेट संस्थानों और नर्सिंग होमों में इलाज करा पाने में अक्षम आम लोग सामान्य रोगों का शिकार होकर मरने और नीमहकीमों की शरण में जाने को विवश होते हैं। बहुराष्ट्रीय फार्मास्युटिकल कम्पनियाँ लोगों को गिनीपिग के रूप में और डॉक्टरों का अपने एजेण्ट के रूप में इस्तेमाल करती हैं और उनका मुनाफ़ा अँधेरगर्दी भरी लूट से कम कुछ भी नहीं होता। यदि आप जनता के स्वास्थ्य को लेकर चिन्तित होते तो इस सवाल पर भी तो कभी आवाज़ उठाते! क्यूबा जैसे देशों की बात छोड़ भी दें तो दुनिया के कई, भारत से भी पिछड़े देशों में स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति भारत से कई गुना बेहतर है! क्या आपने इस प्रश्न पर भी कभी सोचा है? आपको लगता है कि आरक्षण से अयोग्य लोग डॉक्टर बन जायेंगे और स्वास्थ्य सेवाओं का स्तर गिर जायेगा! लेकिन तमिलनाडु में तो मेडिकल शिक्षा में दलितों और पिछड़ों के लिए आरक्षण काफ़ी पहले से लागू है और वहाँ मानव स्वास्थ्य सूचकांक अन्य अधिकांश राज्यों से बेहतर है! इसके बारे में आप क्या कहेंगे?

ये सभी सवाल उठाने के पीछे जो हमारा मूल मन्तव्य है, वह आप समझ चुके होंगे। सच्चाई यह है कि आरक्षण के विरोध की वर्तमान लहर के पीछे (पहले की तरह) मूलतः और मुख्यतः योग्यता, न्याय और राष्ट्रहित की कोई चिन्ता नहीं बल्कि सदियों पुराने, गहरे, दलित और पिछड़ा विरोधी जातिगत पूर्वाग्रहों, घृणा और प्रतिक्रियावादी संस्कारों की अहम भूमिका है। सवर्ण जाति का शिक्षित मध्यवर्ग यह सोचता है कि आरक्षण के कारण अब दलित और पिछड़े भी उनके बराबरी में आ जायेंगे और उनके विशेषाधिकारों में बाँट-बखरा करने लगेंगे। वह यह नहीं सोचता कि एक न्यायसंगत जनवादी व्यवस्था में सभी को शिक्षा, स्वास्थ्य और रोज़गार का बुनियादी अधिकार है और लड़ाई ऐसी एक व्यवस्था की स्थापना के लिए होनी चाहिए। इसके बजाय, सरकार जैसे ही आरक्षण का शिगूफ़ा उछालती है, वह सोचता है कि पहले से ही सिकुड़ते शिक्षा और रोज़गार के अवसर इन दलितों और पिछड़ों के कारण अब और कम हो जायेंगे और समान एवं निःशुल्क शिक्षा तथा सबको रोज़गार के समान अवसर के सार्विक अधिकार के मसले पर निर्णायक संघर्ष की दीर्घकालिक तैयारी के बजाय वह आरक्षण का विरोध करने में जुट जाता है। इसके लिए **न्याय और राष्ट्रहित के चाहे जितने तर्क गढ़े जायें, वास्तव में इसके पीछे गहन दलित-विरोधी और पिछड़ी जाति-विरोधी मानवद्वेषी, प्रतिक्रियावादी भावना और सदियों पुराने जातिगत प्रतिक्रियावादी संस्कार काम कर रहे होते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो 'यूथ फॉर इक्वैलिटी' के बैनर तले संचालित रैलियों में क्षत्रिय स्वाभिमान मंच, सवर्ण अधिकार मोर्चा, ब्राह्मण अधिकार मंच और मनुवादी मोर्चा जैसे बैनर नहीं दिखायी देते। ये बैनर बताते हैं कि आरक्षण का विरोध करने वाली मुख्यधारा सवर्णता और द्विजता की ज़मीन पर खड़ी होकर अपने विशेषाधिकारों की हिफ़ाज़त करना चाहती है।** इसी के चलते दलित और पिछड़ी जातियों के आम लोगों में भी, स्वाभाविक तौर पर, जातिगत आधार पर एक प्रतिक्रिया पैदा होती है और समस्या की तह तक पहुँचने के बजाय और जाति-प्रश्न के निर्णायक एवं अन्तिम समाधान की किसी क्रान्तिकारी, आमूलगामी परियोजना पर सोचने-विचारने के बजाय वे आरक्षण के समर्थन में आँख मूँदकर खड़े हो जाते हैं। नतीजतन, आम आबादी का जातिगत पार्थक्य और द्वेषभाव एक बार फिर गहरा हो जाता है, उसे फिर एक नयी खुराक मिल जाती है। शासक वर्गों की चालबाज़ी एक बार फिर सफल हो जाती है और साम्राज्यवादी-पूँजीवादी लूट और अँधेरगर्दी के विरुद्ध सभी शोषितों-उत्पीड़ितों को एकजुट करने की कोशिशों पर वे एक बार फिर प्रभावी ढंग से चोट कर पाने में सफल हो जाते हैं।

अब हम इसी प्रश्न पर आरक्षण के समर्थकों से भी चन्द दो-टूक बातें करना चाहते हैं।

आरक्षण के समर्थकों से

तमाम सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों और पूँजीवादी आर्थिक विकास के बावजूद, राजनीतिक स्वतंत्रता-प्राप्ति के लगभग छह दशक बाद भी हमारे देश में जाति का ज़हर समाज के पोर-पोर में मिला हुआ है। दलित जातियाँ न केवल अपमानजनक सामाजिक पार्थक्य और बर्बर सामाजिक उत्पीड़न की शिकार हैं, बल्कि आर्थिक तौर पर भी लगभग नब्बे फ़ीसदी दलित आबादी पूँजीवादी समाज के "नये गुलामों"—उजरती मज़दूरों की कतारों में खड़ी है। पिछड़ी जातियों की स्थिति उनसे कुछ भिन्न है और देश के कई हिस्सों में इनका एक हिस्सा पूँजीवादी धनी किसान बनकर गाँवों के स्तर पर शोषक-शासक जमात में शामिल हो गया है, दलित जातियों का नया उत्पीड़क बनकर उभरा है तथा गाँवों से लेकर राज्यों और देश के केन्द्रीय राजनीतिक तंत्र तक में इसकी

वर्गीय स्थिति के अनुरूप हिस्सेदारी भी बनी है, लेकिन शिक्षा, शहरी नौकरियों, प्रशासन और स्वतंत्र व्यवसायों में इसकी भागीदारी अभी सानुपातिक रूप से काफ़ी कम है और इसका आधार मुख्यतः कृषि अर्थव्यवस्था बना हुआ है। लेकिन इससे भी अहम बात यह है कि कुछ पिछड़ी जातियों के एक छोटे से हिस्से को छोड़कर, उनका बड़ा हिस्सा और अन्य अधिकांश पिछड़ी जातियाँ सामाजिक-आर्थिक तौर पर दलितों के ही समकक्ष या उनसे कुछ ही ऊपर हैं तथा आर्थिक तौर पर उनकी स्थिति सर्वहारा, अर्द्धसर्वहारा या निम्नमध्यवर्ग से आगे की कत्तई नहीं है। इनका जो हिस्सा कृषि अर्थव्यवस्था में मुनाफ़ाख़ोर वर्ग और ग्रामीण समाज के स्वामी वर्ग का हिस्सा बन चुका है, वह तो कालान्तर में पैसे की ताक़त से उच्च शिक्षा और नौकरियाँ हासिल करके शहरी अभिजन समाज का अंग (या समकक्ष) बन भी जायेगा, लेकिन पिछड़ी जातियों की बहुसंख्यक ग़रीब आबादी तो पूँजीवादी समाज की असमानतापूर्ण प्रतिस्पर्द्धा में लगातार पिछड़ती ही चली जायेगी।

भारतीय समाज की इस नंगी, क्रूर और वीभत्स सच्चाई के मद्देनज़र, यदि भावुकतापूर्ण ढंग से उद्विग्नचित्त होकर सोचा जाये तो दलितों और पिछड़ों के लिए शिक्षा और नौकरियों में आरक्षण का फार्मूला न्यायसंगत प्रतीत होता है। लेकिन गहराई से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि दलितों और पिछड़ी जातियों की वास्तविक सामाजिक-आर्थिक स्थिति में, वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था के फ्रेमवर्क के भीतर, आरक्षण या ऐसे किसी भी प्रावधान से कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं होने वाला है। **आरक्षण का मूल मन्तव्य सदियों से वंचित-उत्पीड़ित लोगों के आक्रोश की ज्वाला को भड़क उठने से रोकने के लिए उस पर पानी के छींटे मारना मात्र है। शोषित-उत्पीड़ित दलितों और पिछड़ी जातियों के आक्रोश को व्यवस्था-विरोधी विस्फोट के रूप में फूट पड़ने से रोकने के लिए आरक्षण का हथकण्डा एक सेफ्टीवॉल्व का काम करता है।**

जो लोग वंचितों-उत्पीड़ितों के बीच से ऊपर उठकर सफ़ेदपोशों की जमात में शामिल होते हैं, वे कायरता, गलाज़त और प्रतिक्रियावादी मानसिकता के मामले में परम्परागत सफ़ेदपोशों से भी बढ़-चढ़कर होते हैं। जो लोग "दलित पूँजीवाद" के लिए बेहाल हैं, उन्हें उन बहुसंख्य दलितों की चिन्ता नहीं है जो ऐसे दलित पूँजीपतियों और अन्य पूँजीपतियों के कारखानों में उजरती गुलामी करते हुए अपनी ज़िन्दगी जलाते-गलाते रहेंगे।

दलितों के लिए दो दशकों से शिक्षा और रोज़गार के क्षेत्र में लागू आरक्षण से मात्र इतना फ़र्क पड़ा है कि उनके बीच से एक अत्यन्त छोटा, सुविधाजीवी मध्यवर्ग पैदा हुआ है जो गाँवों और शहरों में निकृष्टतम कोटि के उजरती गुलामों का जीवन बिताने वाले दलितों से अपने को पूरी तरह काट चुका है। चूँकि उसे भी ऊँची जातियों के हमपेशा लोगों के बीच तरह-तरह से, प्रत्यक्ष-परोक्ष सामाजिक अपमान का सामना करना पड़ता है, इसलिए वह उस दलितवादी राजनीति के पक्षधर, प्रवक्ता और सिद्धान्तकार की भूमिका बढ़-चढ़कर निभाता है, जिसका चरित्र तमाम गरमागरम बातों के बावजूद, निहायत सुधारवादी है और जो व्यापक दलित आबादी की भावनाओं को भुनाकर मात्र अपना वोट बैंक मज़बूत करने का काम किया करती है। रिपब्लिकन पार्टी से लेकर बसपा और उदितराज की पार्टी तक, और यही नहीं, तमाम छोटे-छोटे रैडिकल दलित संगठनों से लेकर अधिकांश दलितवादी बुद्धिजीवियों तक—सभी पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर ही सुधार की गुंजाइश के लिए लड़ते हैं, चाहे उनके तेवर जितने भी तीखे हों। नंगी सच्चाई यह है कि भारत में जब तक पूँजीवाद रहेगा, तब तक उजरती गुलामी रहेगी और दलितों (और पिछड़ों का भी) का बहुलांश तब तक इन्हीं उजरती गुलामों की क़तारों में शामिल रहेगा। जातिगत आधार पर क़ायम पार्थक्य और शोषण-उत्पीड़न का आधार पहले सामन्तवाद था और आज पूँजीवाद है। इसे समाप्त करने के लिए पूँजीवाद-विरोधी क्रान्तिकारी संघर्ष के अतिरिक्त और कोई भी बुनियादी उपाय नहीं है। जाहिर है कि हम केवल आर्थिक-राजनीतिक संघर्ष की ही बात नहीं कर रहे हैं। व्यवस्था विरोधी यह क्रान्तिकारी संघर्ष उस आमूलगामी सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन के बिना अधूरा होगा और कभी सफल न हो सकेगा जो जातिगत विभेद को अपने एजेण्डा पर प्रमुखता के साथ स्थान देगा, जो जनता के बीच जातिगत आधार पर क़ायम विभेद को समाप्त करने के लिए सतत सक्रिय होगा। **सच्चाई यह है कि भारतीय समाज में जाति का ज़हर इतनी गहराई तक घर किये हुए है कि किसी सामाजिक-राजनीतिक क्रान्ति के बाद भी, इसके समूल नाश के लिए सतत सांस्कृतिक क्रान्ति के एक लम्बे सिलसिले की ज़रूरत होगी।**

यदि आरक्षण ही समस्या का समाधान होता तो पंजाब में 37 प्रतिशत आरक्षित नौकरियों में से 30,000, हरियाणा में 47 प्रतिशत आरक्षित नौकरियों में से 10,000, हिमाचल प्रदेश में 47 प्रतिशत आरक्षित नौकरियों में से 6,000, बिहार में 50 प्रतिशत आरक्षित नौकरियों में से 62,500, पंजाब में 37 प्रतिशत आरक्षित नौकरियों में से 30,000, राजस्थान में 49 प्रतिशत आरक्षित नौकरियों में से 41,565 और मध्यप्रदेश में 50 प्रतिशत आरक्षित नौकरियों में से 11,500 पद खाली नहीं पड़े रहते। अन्य राज्यों की स्थिति भी इससे बेहतर नहीं है। अनुमानतः देश भर में एक लाख ऐसी सरकारी नौकरियाँ हैं जो कोटे के तहत ख़ाली हैं। सच्चाई यह है कि अनुसूचित जातियों-जनजातियों व अन्य पिछड़ी जातियों की बहुसंख्यक आम आबादी की ऐसी आर्थिक-शैक्षणिक स्थिति ही नहीं है कि वह इन नौकरियों के लिए आवेदन कर सके। जो आरक्षित सीटें भरती हैं, वे उनके खाते में ही चली जाती हैं जो पहले से ही मध्यवर्ग में शामिल हो चुके हैं। शैक्षणिक स्थिति में परिवर्तन की रफ़्तार यह है कि आज़ादी के 59 वर्षों बाद भी, 79.88 प्रतिशत अनुसूचित जाति के छात्र स्कूली पढ़ाई अधूरी छोड़ देते हैं। उच्च शिक्षा में अनुसूचित जाति-जनजाति के लिए आरक्षित 50 प्रतिशत सीटें खाली रह जाती हैं और आरक्षण के अन्तर्गत दाखिला लेने वाले 25 प्रतिशत छात्र बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। पिछड़ी जातियों के लिए भी उच्च शिक्षा में आरक्षण

लागू होने के बाद स्थिति इससे कुछ भिन्न नहीं होगी। ग़रीब घरों के युवा, आर्थिक कारणों से या तो आरक्षण के बावजूद दाख़िला नहीं ले पायेंगे, या फिर बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने को विवश होंगे। लाभ केवल पिछड़ी जाति के उन थोड़े से परिवारों को ही मिलेगा, जिनकी आर्थिक स्थिति धनी या खुशहाल मध्यम किसान की है या जो खेती से अर्जित मुनाफ़े के सहारे, पहले से ही शहरी मध्यवर्ग की कतारों में शामिल हो चुके हैं।

आरक्षण के समर्थक इन्हीं आँकड़ों के आधार पर कहेंगे कि इसीलिए आरक्षण को अभी लम्बे समय तक जारी रहना चाहिए और इसके दायरे को भी विस्तारित किया जाना चाहिए। लेकिन हमारा कहना यह है कि इस रफ़्तार से ही यदि आरक्षण का प्रभाव पड़ता रहा तब तो एक शताब्दी बाद भी स्थिति में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं आयेगा। और इससे भी अहम बात यह है कि उदारीकरण-निजीकरण के इस "रोज़गारविहीन विकास" के दौर में जब सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र की नौकरियाँ लगातार कम होती जा रही हैं (और निजी क्षेत्र में भी कुल मिलाकर उत्पादन के विकास और सेवाक्षेत्र के विस्तार के अनुपात में रोज़गार के अवसर पहले के मुकाबले काफ़ी कम पैदा हो रहे हैं) तो ऐसी स्थिति में आरक्षित नौकरियों का प्रतिशत यदि कुछ बढ़ भी जाये तो आम दलित और पिछड़ों की जीवन स्थितियों में भला इससे क्या फ़र्क पड़ने वाला है? एक बटलोई भात पर यदि सौ खाने वाले हों और भात का कुछ हिस्सा कुछ प्रतिशत अधिक भूखों के लिए आरक्षित भी कर दिया जाये तो किसी भी भूखे की स्थिति में कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा, क्योंकि भूखों की संख्या की तुलना में भात है ही बहुत कम! आज आरक्षण का प्रतिशत यदि बढ़ा भी दिया जाये और यह पूरी तरह से लागू भी हो जाये, तो भी आम दलितों और पिछड़ों की सामाजिक स्थिति में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हो सकता। पूँजीवादी विकास आबादी का अभूतपूर्व गति से ध्रुवीकरण कर रहा है और यह पूँजीवाद की विशेषता होती है कि जो पहले से ही वंचित और उत्पीड़ित होते हैं, उन्हीं को सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा की कतारों में सबसे पहले शामिल करता है। दासों-भूदासों और उजड़े काश्तकारों के बेटे ही सबसे पहले उद्योगों के सर्वहारा बनते हैं। भारत में भी दलितों के साथ और पिछड़ी जातियों के बहुलांश के साथ ऐसा ही हुआ। कालान्तर में इनके बीच से, सचेतन प्रयासों से, बुर्जुआ राज्यसत्ता ने एक अत्यन्त छोटी मध्यवर्गीय जमात भी पैदा की, जो मुखर और वाचाल है, जो जातिगत उत्पीड़न पर खूब बोलती है, लेकिन साथ ही आम दलित आबादी और आम पिछड़ों की आबादी से वह अपने को काट चुकी है, वह पराजित मन है, सापेक्षतः विशेषाधिकार-प्राप्त और सुविधाभोगी है तथा हर प्रकार के क्रान्तिकारी परिवर्तन की विरोधी और घनघोर सुधारवादी है। वह आम दलितों की नुमाइन्दगी का स्वांग भरते हुए अपनी सुविधाओं की पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुरक्षा की गारण्टी चाहती है और विकास के पूँजीवादी मॉडल की अन्ध समर्थक है। दलितों और पिछड़ी जातियों के बीच की यही मध्यवर्गीय जमात आरक्षण को समस्या

(पेज 36 पर जारी)

अमर शहीद भगवती चरण वोहरा

शहादत दिवस (28 मई) के अवसर पर

अपनी जान तक न्यौछावर करने वाले क्रान्तिकारियों की वीर गाथाओं से कौन परिचित नहीं होगा? लेकिन इस आन्दोलन के दूसरे सबसे बड़े रणनीतिकार एवं प्रबुद्ध सिद्धान्तकार, क्रान्तिकारी और दुर्गा भाभी के जीवन-साथी—अमर शहीद भगवती चरण वोहरा—को कितने लोग जानते है?

भगवती चरण वोहरा का जन्म 1903 में आगरा में हुआ था। बचपन में ही दुर्गा देवी (दुर्गा भाभी के नाम से प्रसिद्ध) से उनका विवाह हो गया। लेकिन पढ़ाई जारी रही। उनकी शिक्षा-दीक्षा भगत सिंह तथा सुखदेव के साथ ही लाला लाजपत राय द्वारा स्थापित नेशनल कॉलेज, लाहौर में हुई। 1921 में गाँधी जी के आह्वान पर पढ़ाई छोड़ असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। आन्दोलन वापस लिये जाने से हताश हो उन्होंने पढ़ाई शुरू की। इसी दौरान भगत सिंह, सुखदेव और भगवती चरण वोहरा क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आये। इन तीनों क्रान्तिकारियों की समझ बढ़ाने में नेशनल कॉलेज के प्रोफेसर छबील दास और 'सर्वेण्ट ऑफ दि पीपल' सोसायटी की द्वारका दास लाइब्रेरी के लाइब्रेरियन राजाराम का बहुत योगदान रहा।

आजीवन कारावास की सज़ा भुगत चुके क्रान्तिकारी साथी स्वर्गीय शिव वर्मा के शब्दों में, "वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सामाजिक विज्ञान की गहरी पकड़ के मामले में भगतसिंह और वोहरा की बौद्धिक मेधा एक जैसी थी।" (संस्मृतियां)

यह बहुत कम लोग जानते हैं कि असेम्बली बम काण्ड में भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त के द्वारा इंकलाब ज़िन्दाबाद-साम्राज्यवाद मुर्दाबाद का जो नारा लगाया गया था वह शहीद वोहरा द्वारा ही दिया गया था। जो कालान्तर में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का प्रतीक नारा बन गया। और बाद में इंकलाब का जो अर्थ बताया गया उससे उनकी समझ और बौद्धिक प्रतिभा का कायल हुए बिना नहीं रहा जा सकता।

1926 में भगत सिंह ने 'नौजवान भारत सभा' की स्थापना की जिसके घोषणापत्र का मूल दस्तावेज वोहरा द्वारा तैयार किया गया। इसमें कांग्रेस की ढुलमुल नीति की जो आलोचना की गई और जितने ओजस्वी शब्दों में नौजवानों को भावी समाज निर्माण के लिए आगे आने की अपील की गई—आज भी पढ़कर रोमांच हो जाता है। नौजवानों के अन्दर इस घोषणा पत्र ने भगवती चरण वोहरा को प्रखर क्रान्तिकारी विचारक एवं कुशल प्रचारक के रूप में प्रसिद्धि दिला दी। यह गौरतलब है कि नौजवान भारत सभा के प्रचार मंत्री वोहरा ही थे।

इनके द्वारा तैयार दूसरा ऐतिहासिक सुप्रसिद्ध दस्तावेज़ 1929 में 'बम का दर्शन' के नाम से आया। वायसराय की ट्रेन पर बम हमले पर गाँधी द्वारा निन्दा किये जाने और यंग इण्डिया पत्र में

(पेज 27 पर जारी)

महाबली की किरकिरी

● अभिनव

पूँजीवादी-साम्राज्यवादी वैश्विक व्यवस्था की सबसे बड़ी ख़ासियतों में से एक यह है कि इसमें सबकुछ इसके कर्ता-धर्ताओं की इच्छानुसार नहीं चलता है। वे अक्सर चाहते कुछ हैं, और होता कुछ और है। जितना वे बचना चाहते हैं, उतना फँसते जाते हैं; जितनी शान बचाना चाहते हैं उतनी शर्मिंदगी झेलते हैं। अब पूर मध्य-पूर्व में अमेरिका की हालत को ही देख लें।

अभी कुछ समय पहले तक ईरान के मसले पर अमेरिका झुकने को बिल्कुल तैयार नहीं था। वह किसी भी कीमत पर ईरान को यूरेनियम संवर्धन और अपना नाभिकीय कार्यक्रम रोकने के लिए बाध्य करना चाहता था। ईरान के ख़िलाफ़ वह लगातार आर्थिक प्रतिबन्ध लगाने की बात कर रहा था और यह भी कह रहा था कि आख़िरी विकल्प के तौर पर सैन्य हस्तक्षेप की सम्भावना से भी इंकार नहीं किया जा सकता। लेकिन ताज़ा ख़बरों के मुताबिक अमेरिका और यूरोपीय संघ, जो इस मामले पर अमेरिका के साथ था, ने अपने स्वर ईरान मसले पर नरम किये हैं। ईरान को अपना नाभिकीय कार्यक्रम रोकने की एवज़ में तमाम पैकेज और रियायतें देने की पेशकश की जा रही है। अमेरिका ने तो यहाँ तक कह दिया कि अगर ईरान यूरेनियम संवर्धन बन्द कर दे और जो भी नाभिकीय कार्यक्रम चलाए वह अन्तरराष्ट्रीय नाभिकीय ऊर्जा संघ की निगरानी में चलाए, तो नागरिक उपयोग के लिए नाभिकीय ऊर्जा के विकास में वह स्वयं उसकी सहायता करेगा। यूरोपीय संघ ने पेशकश की है कि अगर ईरान अपना यूरेनियम संवर्धन का कार्यक्रम बन्द कर दे तो वह उसके हवाई जहाज़ों और संरचनात्मक उद्योगों के आधुनिकीकरण में सहायता करेगा।

साफ़ तौर पर ईरान मसले पर अमेरिका और यूरोपीय संघ को अपने सख़्त रवैये से पीछे हटना पड़ा है। ईरान फिर भी नहीं झुक रहा है और कह रहा है कि अगर अमेरिका अनाक्रमण संधि पर हस्ताक्षर कर दे तो कुछ शर्तों को वह मान जाएगा। इस बात के लिए अमेरिका तैयार नहीं है। नतीजतन, अभी दोनों पक्षों के लिए स्वीकार्य किसी सौदे के लिए मशक्कत जारी है।

ईरान मसले पर अमेरिका के पीछे हटने के कई कारण रहे और इससे कई बातें जाहिर होती हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात जो एक बार फिर साबित हुई है वह यह है कि जनता को परास्त नहीं किया जा सकता है। इराक़ में अमेरिका के तमाम मंसूबों पर पानी फिर गया। भयंकर दमन और तबाही के बावजूद इराक़ी जनता अपना प्रतिरोध युद्ध जारी रखे हुए है। अमेरिकी हवाई अड्डों पर सैकड़ों की संख्या में उतरते 'बॉडी बैग्स' ने अमेरिका के बुजुर्गों को वियतनाम युद्ध के दिनों की याद दिला दी है। अमेरिका के 6 हज़ार से ज्यादा सैनिक इराक़ युद्ध की शुरुआत के बाद से मारे जा चुके हैं। यह तो सरकारी तथ्य हैं। कई सूत्रों के अनुसार तो यह संख्या इसकी ठीक दूनी है। वहीं अफ़गानिस्तान में भी स्थितियाँ बिल्कुल बदल चुकी हैं। काबुल से बाहर कहीं भी अमेरिकी टट्टू हामिद करज़ई का शासन नहीं है। हर जगह अफ़गानिस्तानी प्रतिरोध योद्धाओं ने अपना प्रभाव फैलाना शुरू कर दिया है। तालिबान एक बार फिर से उठ खड़ा हुआ है और किसी अन्य ताक़त की ग़ैर-मौजूदगी में अमेरिका के ख़िलाफ़ नफ़रत जनता को फिर से तालिबान के पास ले गयी है। अब तो काबुल के भीतर भी आत्मघाती हमले हो रहे हैं और अमेरिका और उसके टट्टू अपने आपको कहीं भी सुरक्षित महसूस नहीं कर पा रहे हैं। अफ़गानिस्तान और इराक़ में अपने हश्र को देखकर अमेरिका के समझ में एक बात आई लगती है। वह यह कि अगर वह इराक़ और अफ़गानिस्तान में जनता को कुचल नहीं सका तो ईरान में तो वह जनता को कुचलने का बस सपना देख सकता है। वह ईरान पर अपनी सैन्य शक्ति के बल पर विजय ज़रूर प्राप्त कर लेता लेकिन उसके बाद वह अपने मन मुआफ़िक कुछ भी नहीं कर पाता। ईरान इराक़ और अफ़गानिस्तान से कहीं ज़्यादा संगठित, बड़ा और वैविध्यपूर्ण देश है। उसकी अर्थव्यवस्था में सिर्फ़ तेल ही नहीं है बल्कि अन्य तमाम मामलों में भी वह आत्मनिर्भर है। पश्चिम से पूरब और पूरब से पश्चिम जाने वाले तेल के सारे रास्ते ईरान से होकर जाते हैं। अनाज के मामले में भी वह आत्मनिर्भर है। इसके अलावा ईरानी जनता अमेरिकी नीतियों को ईरानी क्रान्ति के दौरान एक बार धूल चटा चुकी है। ऐसे भी अमेरिका के पास दो कदम पीछे हटने के अलावा और कोई रास्ता कम से कम फिलहाल तो नहीं था।

अमेरिका को यह बात भी समझ में आ रही है कि अगर वह ईरान पर हमला करता है तो इराक़ में वे शिया भी जो अभी अमेरिका के ख़िलाफ़ कोई कदम नहीं उठा रहे हैं, अमेरिका के ख़िलाफ़ मुखर रूप से सामने आ जाएँगे और सुन्नी और शिया दोनों ही आबादियों के व्यापक रूप से अमेरिका के ख़िलाफ़ हो जाने की सूरत में उसके लिए फूट डालकर गृह युद्ध जैसी स्थिति पैदा करके अपनी स्थिति को सम्भाल पाना मुश्किल हो जाएगा। कुर्द तो यह समझने ही लगे हैं कि अमेरिका कुर्दिस्तान की माँग का सच्चा हमदर्द नहीं है। वे भी अमेरिका का साथ देना छोड़ रहे हैं और विरोध शुरू कर रहे हैं।

अमेरिका के आवाज़ नरम करने से एक बात और सिद्ध हुई है। यह दुनिया कोई एकध्रुवीय विश्व नहीं है। निस्संदेह रूप से विश्व साम्राज्यवाद का चौधरी आज भी अमेरिका ही है। लेकिन ऐसा नहीं है कि कोई अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा नहीं है और सभी देशों ने अमेरिकी ताक़त के आगे घुटने टेक दिये हैं। सभी साम्राज्यवादी देशों के हित दुनिया के तमाम हिस्सों में एक दूसरे से गुंथे हुए हैं। कहीं उनमें अन्तरविरोध नहीं है या कम है तो कहीं वे

एकदम विपरीत हैं। अमेरिका के आगे झुकने का सवाल भी इन देशों के लिए इसी कारक से जुड़ा हुआ है कि उनके हितों पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है। इन्हीं अन्तरविरोधों के चलते अमेरिका को ईरान मसले पर अन्य साम्राज्यवादी देशों से कड़े विरोध का सामना करना पड़ रहा है। एक तरफ़ चीन और रूस ने ईरान के विरुद्ध किसी भी सैन्य कदम का विरोध किया है तो दूसरी ओर अमेरिका के पारम्परिक मित्र भी इस मसले पर अमेरिका का साथ छोड़ने लगे हैं। मसलन, जापान और ऑस्ट्रेलिया तक इस मसले पर अमेरिका का साथ नहीं दे रहे हैं। कनाडा तक ने अमेरिका की मध्य-पूर्व नीति और ईरान पर उसके रुख़ की नरम स्वर में आलोचना की है। यूरोपीय संघ भी किसी भी सूरत में सैन्य हस्तक्षेप से बचना चाहता है। अन्य साम्राज्यवादी देशों की इस नीति के पीछे उनके निहित आर्थिक स्वार्थ काम कर रहे हैं जिन्हें वह अमेरिका के दबाव के सामने झुककर कुर्बान करने को तैयार नहीं हैं।

ईरान में चल रही तमाम विकास परियोजनाओं में तमाम जापानी और चीनी कम्पनियों की भारी पूँजी लगी हुई है। साथ ही जापान के पास अपना कोई तेल भण्डार नहीं है और उसकी अर्थव्यवस्था खाड़ी और अरब के तेल के बिना एक दिन भी नहीं चल सकती। साथ ही चीन और रूस ने जो शंघाई सहकार संघ बनाया है उसके तहत अरब और ईरान में उनकी अपनी महत्वाकांक्षाएँ हैं। इस क्षेत्र में वे अमेरिकी प्रभुत्व में सेंध लगाने की कोशिश कर रहे हैं और बीच-बीच में अमेरिका के ख़िलाफ़ गम्भीर चुनौतियाँ खड़ी कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त, अरब देशों में शेखों-शाहों की जो सत्ताएँ हैं वे भी अफ़गानिस्तान, इराक़ और फिलिस्तीन के बाद भयभीत हैं। इन देशों में अमेरिका की कारगुज़ारियों के कारण अरब जनता में अमेरिका के ख़िलाफ़ भारी गुस्सा भरा हुआ है। अगर अमेरिका ईरान पर हमला करता तो इन शासकों के लिए अमेरिका का पक्ष ले पाना मुश्किल हो जाता। उन्हें इस बात का अहसास है कि ऐसा करने पर उनके देश के भीतर से ही उनकी सत्ताओं को ख़तरा पैदा हो जाएगा। इसलिए ये देश भी ईरान मसले पर अमेरिका का समर्थन करने से कतरा रहे थे। वहीं स्वेज़ नहर के पार अमेरिकी नीति का एक पुराना समर्थक मिस्र भी अब अमेरिकी नीति पर सवाल उठा रहा है। कैम्प डेविड में मिस्र के तत्कालीन राष्ट्रपति अनवर सादात का घुटने टेकना अमेरिका की विजय थी। लेकिन अरब विश्व में अमेरिका के ख़िलाफ़ बढ़ती नफ़रत के कारण मिस्र के राष्ट्रपति हुस्नी मुबारक ने साफ़ तौर पर कहा है कि अमेरिका अरब देशों के आंतरिक मसलों में ज़रूरत से ज़्यादा दखल दे रहा है।

यह साफ़ दिखाई दे रहा है कि अमेरिका विश्व भर में ईरान मसले पर अपने पुराने सहयोगियों का समर्थन भी नहीं जीत पा रहा है। लेकिन बात सिर्फ़ दूसरे देशों की नहीं है बल्कि स्वयं अमेरिका के भीतर बुश ईरान के मसले पर समर्थन नहीं जीत पा रहा है। डेमोक्रैटों की बात तो छोड़ दें रिपब्लिकन पार्टी के भीतर उसे भारी विरोध का सामना करना पड़ रहा है। अमेरिका ने इराक़ पर युद्ध थोपा था अपनी कम्पनियों और कारपोरेशनों के मुनाफ़े के लिए। डिक चेनी की कम्पनी और इसी प्रकार कई अन्य अमेरिकी राजनीतिज्ञों की कम्पनियों के दबाव में अमेरिका ने इराक़ पर हमला कर दिया। उसकी उम्मीद थी कि विजय के बाद वह इराक़ को अपनी कम्पनियों की लूट की खुली चरागाह बना देगा साथ इराक़ी तेल पर भी उसका कब्ज़ा हो जायेगा। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। इराक़ी प्रतिरोध योद्धाओं ने मुनाफ़ा कमाना तो दूर इराक़ में अमेरिका का रहना भी मुश्किल बना दिया है। अब बुश के लिए मुनाफ़े का लॉलीपॉप दिखा कर हमले के लिए समर्थन जीत पाना बहुत मुश्किल है। नतीजतन, बुश खेमा अपनी ही पार्टी में अकेला पड़ गया है। आखिरी चुनाव के बाद जनता में भी बुश की लोकप्रियता बुरी तरह गिरी है और अगर अभी चुनाव हो जायें तो बुश की हार होना तय है। कुछ ऐसी ही हालत ब्रिटेन में टोनी ब्लेयर की है। अमेरिका के पीछे-पीछे चलने और ब्रिटेन के राष्ट्रीय हितों से समझौता करने को लेकर ब्लेयर भी अपनी ही पार्टी में अकेला पड़ गया है। उसे भारी विरोध का सामना करना पड़ रहा है।

जनता दुनिया भर में कई अदृश्य सूत्रों से बंधी होती है। प्रतिक्रान्ति के दौर में भी, जब क्रान्ति पर प्रतिक्रान्ति की धारा हावी होती है, जनता के संघर्ष दुनिया भर में परोक्ष रूप से एक-दूसरे की सहायता करते हैं। मिसाल के तौर पर, मध्य-पूर्व में जनता के संघर्षों के कारण अमेरिका अपनी ही नाक के नीचे लातिन अमेरिका में अपने टूटते प्रभुत्व को बचाने के लिए कुछ नहीं कर पा रहा है। अब चुटकी बजाते सैन्य तख़्तापलट कराकर अपनी कठपुतली सरकार बनवाना अमेरिका के बस की बात नहीं रह गई है। दूसरी ओर जनता द्वारा हताशा में किये जाने वाले विरोध को हम आतंकवाद नहीं कह सकते। अगर इराक़ और फिलिस्तीन में आत्मघाती हमले अमेरिकी साम्राज्यवादियों की नींद उड़ा रहे हैं तो उसे आतंकवादी नहीं कहा जा सकता। यह भी ग़ौर करने की बात है कि ऐसा एक भी हमला नागरिकों के ऊपर नहीं किया जाता है। जब तक जनता का कोई क्रान्तिकारी प्रतिरोध संगठित नहीं होता तब तक भी जनता कोई घर नहीं बैठ जाती और उसका पौरुष चुक नहीं जाता है। वह तब भी अपनी लड़ाई को अगणित तरीकों से जारी रखती है।

इस तरह कई स्तरों पर अन्तरविरोध काम कर रहे हैं। इन्हीं बहुस्तरीय अन्तरविरोधों के कारण अमेरिका को अपना स्वर नरम करने को बाध्य होना पड़ा है और ईरान को वह तरह-तरह की रियायतों और सहायता का लालच देकर उसके नाभिकीय कार्यक्रम को रुकवाना चाहता है। यूरोपीय संघ भी अपनी रेवड़ी और गजक लेकर ईरान को ललचाने में लगा है। कोई नागरिक नाभिकीय कार्यक्रम में मदद के लिए कह रहा है तो कोई जहाज़ देने और मरम्मत करने के लिए कह रहा है। कोई संरचनात्मक उद्योगों के आधुनिकीकरण की पेशकश कर रहा है तो कोई तकनोलॉजिकल इनपुट देने के लिए कह रहा है। इन सब बातों से जो तस्वीर उभरकर सामने आ रही है वह इस तथ्य को साफ़ तौर पर बयान कर रही है कि (1) जनता के संघर्षों को हथियारों के बल पर नहीं कुचला जा सकता। बड़े से बड़े हथियारों के जखीरे जनता के महासमुद्र में डूब जाया करते हैं; और, (2) यह विश्व कोई एकध्रुवीय विश्व नहीं है जिसमें अमेरिका की ऐसी दादागीरी चलती है जिसे चुनौती देने की ताक़त किसी में न हो। एकध्रुवीय विश्व सम्भव ही नहीं है। हमेशा विश्व साम्राज्यवाद का कोई न कोई चौधरी तो होता है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं होता कि कोई अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा नहीं होती।

वृद्धि दर 8 प्रतिशत, बेरोज़गारी दर 10 प्रतिशत

● योगेश

दसवीं पंचवर्षीय योजना की समीक्षा में इस बात पर सरकार ने काफ़ी आँसू बहाए हैं कि बेरोज़गारों की संख्या बढ़ती जा रही है। 2001-02 में बरोज़गारी की दर थी 8.87 फीसदी जो 2004-05 में बढ़कर 9.11 फीसदी हो गई। लेकिन दूसरी तरफ़ कारपोरेट जगत में चारों ओर जश्न का माहौल है कि अर्थव्यवस्था वृद्धि दर 8 प्रतिशत से भी ऊपर जा पहुँची है। सारी दुनिया भारत की बढ़ती आर्थिक ताकत का लोहा मान रही है! मनमोहन-मोण्टेक-चिदम्बरम की तिकड़ी ने जिस समझदारी के साथ अब तक उदारीकरण और भूमण्डलीकरण की नीतियों को लागू किया है उससे भारतीय पूँजीपति वर्ग के बड़े भाई लोग काफ़ी खुश हुए हैं। ऐसे जश्न के माहौल में बेरोज़गारी की बात इन्हें कबाब में हड्डी के समान लगती है।

इस समीक्षा में सरकार ने जो समाहार रखा है उसके अनुसार हर दसवाँ भारतीय बेरोज़गार है। और यह रुझान और बढ़ोत्तरी की तरफ़ है। 1993-94 में बेरोज़गारी की दर 5.99 फीसदी थी। यह आँकड़ा 1999-2000 में 7.32 फीसदी, 2001-02 में 8.87 फीसदी, और 2004-05 में 9.11 फीसदी पहुँच गया। इस बीच ग्रामीण बेरोज़गारी की दर 1993-94 के 5.6 फीसदी से बढ़कर 1999-2000 में 7.2 फीसदी पहुंच गई और 2004 में यह 9 प्रतिशत हो गई।

लेकिन यह सरकारी आँकड़ा है और रोज़गारशुदा होने की सरकारी परिभाषा भी ग़ज़ब की है। इसके अनुसार अगर सर्वेक्षण के दिन कोई काम कर रहा है तो उसे रोज़गारशुदा मान लिया जाता है। लेकिन इन आँकड़ों को भी मानें तो 1993-94 से 2004-05 तक शहरी बेरोज़गारी में 50 फीसदी और ग्रामीण बेरोज़गारी में 60 फीसदी की वृद्धि हुई है। 1990 के दशक के शुरुआत में जब नई आर्थिक नीतियाँ लागू हुई थीं तो कहा गया था कि अगर भारत की विकास दर 3.5 फीसदी से 7 फीसदी पहुँच जाए तो बेरोज़गारी अपने-आप ही दूर हो जाएगी। लेकिन यह क्या!! 8.1 प्रतिशत की वृद्धि दर हासिल होने के बाद बेरोज़गारी ख़त्म होना तो दूर दोगुनी हो गई!

बेरोज़गारों की असल आबादी तो इन आँकड़ों से कहीं ज्यादा है। मौसमी मज़दूरों, घुमन्तू मज़दूरों और खेतिहर मज़दूरों को साल में मुश्किल से 150 दिन का रोज़गार की हासिल होता है। वह भी रोज़गार मुश्किल से ही कहा जाता है। बेरोज़गार का अर्थ यह नहीं है कि जो कुछ नहीं करता वह बेरोज़गार है। बल्कि ऐसे तमाम लोग जिनके पास कोई सुरक्षित और तुलनात्मक रूप से स्थायी रोज़गार नहीं है, वे सभी बेरोज़गारों की श्रेणी में आते हैं। ऐसी भारी आबादी जो गाँवों से होने वाले सीज़नल, सर्कुलर और कम्यूटिंग माइग्रेशन के तहत शहर या पास के कस्बों में जाते हैं, कभी कोई तो कभी कोई काम करके जैसे-तैसे जी लेते हैं, वे सब क्या रोज़गारशुदा कहे जाएँगे? नहीं। अगर ऐसी आबादी को जोड़ लिया जाय तो बेरोज़गारों को आँकड़ा बड़े आराम से 27 से 28 करोड़ के बीच जाकर ठहरता है। 4 करोड़ बेरोज़गार तो वही हैं जिन्होंने रोज़गार दफ्तरों में नाम लिखाया है और इनमें से 3 करोड़ पढ़े-लिखे बेरोज़गार हैं।

रोज़गार पैदा करना तो दूर, उल्टे जो रोज़गार है उसे भी नष्ट किया जा रहा है। 1997 में सार्वजनिक क्षेत्र में 195 लाख 59 हज़ार लोग नौकरी करते थे। 2003 तक यह संख्या घटर कर 185 लाख 80 हज़ार रह गई। निजी क्षेत्र में 1998 में 87 लाख 58 हज़ार लोग नौकरी कर रहे थे। 2003 तक यह संख्या घटकर 84 लाख 21 हज़ार रह गई। इस तरह सार्वजनिक और निजी क्षेत्र को मिला दें तो 5 साल में 13 लाख रोज़गार कम हुए (इकॉनॉमिक सर्वे 2004-05)।

बेरोज़गारी इस व्यवस्था का ढाँचागत संकट है। चिदम्बरम चाहें भी तो इसे दूर नहीं कर सकते। यह इच्छा का प्रश्न है ही नहीं। पूँजीवाद पूर्ण रोज़गार की अवस्था आने पर नष्ट हो जाएगा। बेरोज़गारों की एक रिज़र्व आर्मी के बिना मुनाफे का मैक्सिमाइज़ेशन सम्भव ही नहीं है। और किसी भी पूँजीपति का यही मकसद होता है—अपने मुनाफे को अधिकतम बनाना। वह तभी सम्भव हो सकता है जब वह अपने मज़दूरों को सफलता से नियंत्रण में रख सके। अगर सड़क पर फालतू लोग न हों तो मज़दूर के सामने पूँजीपति की बार्गेनिंग पावर ही क्या बचती है? तो चिदम्बरम न तो चाहेंगे बेरोज़गारी को दूर कर पाना और चाहें तो भी नहीं कर सकते।

●

"मैं इस पर विश्वास नहीं करता कि, अगर दलगत राजनीति बदल भी जाए तो वह उस शैतानी तंत्र को ख़त्म कर सकती है जिसका वह खुद एक हिस्सा है।... मैं अहिंसा में यकीन करता हूँ। लेकिन समस्या यह है कि हमारी सत्ता हिंसा में, बल प्रयोग में, नापाम बमों में, पुलिसिया ज़बर्दस्ती, हवाई बमबारी में, बी-52 और बी-58 जैसे बमवर्षक विमानों में, नाभिकीय हथियारों में और युद्धों में विश्वास करती है। जब तक यह सत्ता-प्रतिष्ठान निर्धारक कारक बना रहेगा, हमारी इस उम्मीद का असलियत में कोई आधार नहीं है कि आने वाली क्रान्ति अहिंसक होगी।"

- लीनस पॉलिंग

(पहले विज्ञान और फिर शान्ति के लिए नोबेल पुरस्कार जीतने वाले मानवतावादी और प्रसिद्ध वैज्ञानिक)

...उस दिन भले लोगों की आँखों में हमारे लिए गर्म आँसू होंगे...

"पेशे का चुनाव करने के सम्बन्ध में एक नौजवान के विचार" नामक लेख से

• युवा मार्क्स

...हमारी जीवन-परिस्थितियाँ यदि हमें अपने मन का पेशा चुनने का अवसर दें तो हम एक ऐसा व्यवसाय अपने लिए चुनेंगे जिससे हमें अधिकतम गौरव प्राप्त हो सकेगा, ऐसा व्यवसाय जिसके विचारों की सचाई के सम्बन्ध में हमें पूरा विश्वास है। तब हम ऐसा व्यवसाय चुनेंगे जिसमें मानवजाति की सेवा करने का हमें अधिक से अधिक अवसर प्राप्त होगा और हम स्वयम् भी सामान्य लक्ष्य के और निकट पहुँच सकेंगे जिससे अधिक से अधिक समीप पहुँचने का प्रत्येक व्यवसाय या पेशा मात्र एक साधन होता है।

कार्ल मार्क्स, 18 वर्ष की उम्र में

गौरव उसी चीज़ को कहते है जो मनुष्य को सबसे अधिक ऊँचा उठाये, जो उसके काम को और उसकी इच्छा-आकाँक्षाओं को सर्वोच्च औदार्य प्रदान करे, उसे भीड़ से दृढ़तापूर्वक ऊपर उठने और उसके विस्मय को जागृत करने का सुअवसर प्रदान करे।

किन्तु गौरव हमें केवल वही व्यवसाय प्रदान कर सकता है जिसमें हम गुलामों की तरह मात्र औज़ार नहीं होते, बल्कि अपने कार्यक्षेत्र के अन्दर स्वतन्त्र रूप से स्वयं सर्जन करते है; केवल वही व्यवसाय हमें गौरव प्रदान कर सकता है जो हमसे गर्हित कार्य करने को माँग नहीं करता-फिर चाहे वे बाहरी तौर से ही गर्हित क्यों न हों और जो ऐसा होता है जिसका श्रेष्ठतम व्यक्ति भी उदात्त अभिमान के साथ अनुशीलन कर सकते हैं। जिस व्यवसाय में इन समस्त चीज़ों की उच्चतम मात्रा में गुंजाइश रहती है वह सदा उच्चतम ही नहीं होता, किन्तु श्रेयस्कर सदा उसी को समझा जाना चाहिए।

कोई व्यक्ति यदि केवल अपने लिए काम करता है तो हो सकता है कि, वह एक प्रसिद्ध विज्ञान-वेत्ता बन जाय, एक महान् सिद्ध पुरुष बन जाय, एक उत्तम कवि बन जाय, किन्तु वह ऐसा मानव कभी नहीं बन सकता जो वास्तव में पूर्ण और महान् है।

इतिहास उन्हें ही महान् मनुष्य मानता है, जो सामान्य लक्ष्य के लिए काम करके, स्वयम् उदात्त बन जाते हैं: अनुभव सर्वाधिक सुखी मनुष्य के रूप में उसी व्यक्ति की स्तुति करता है जिसने लोगों की अधिक से अधिक संख्या के लिए सुख की सृष्टि की है।

हमने यदि ऐसा व्यवसाय चुना है जिसके माध्यम से मानवता की हम अधिक से अधिक सेवा कर सकते है, तो उसके बोझ के नीचे हम दबेंगे नहीं—क्योंकि यह ऐसा होता है जो सबके हित में किया जाता है। ऐसा स्थिति में हमें किसी तुच्छ, सीमित अहम्वादी उल्लास की अनुभूति नहीं होगी, वरन् तब हमारा व्यक्तिगत सुख जनगण का भी सुख होगा, हमारे कार्य तब एक शान्तिमय किन्तु सतत रूप से सक्रिय जीवन का रूप धारण कर लेंगे, और जिस दिन हमारी अर्थी उठेगी उस दिन भले लोगों की आँखों में हमारे लिए गर्म आँसू होंगे।

कठिनाइयों से रीता जीवन...

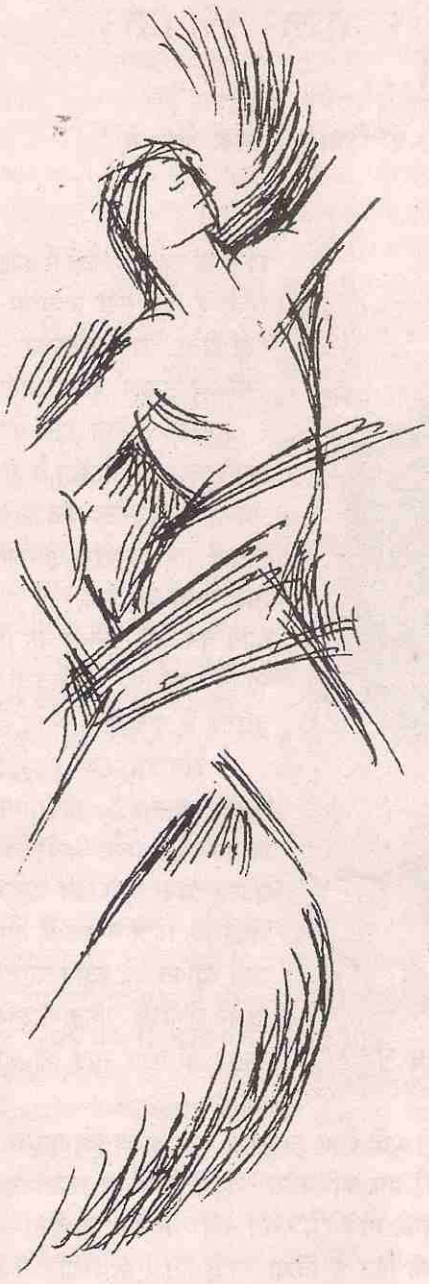

● कार्ल मार्क्स

कठिनाइयों से रीता जीवन
मेरे लिए नहीं,
नहीं, मेरे तूफ़ानी मन को यह स्वीकार नहीं।
मुझे तो चाहिए एक महान ऊँचा लक्ष्य
और, उसके लिए उम्र भर संघर्षों का अटूट क्रम।
ओ कला! तू खोल
मानवता की धरोहर, अपने अमूल्य कोषों के द्वार
मेरे लिए खोल
अपनी प्रज्ञा और संवेगों के आलिंगन में
अखिल विश्व को बाँध लूँगा मैं!
आओ,
हम बीहड़ और कठिन सुदूर यात्रा पर चलें
आओ, क्योंकि–
छिछला, निरुद्देश्य और लक्ष्यहीन जीवन
हमें स्वीकार नहीं।
हम, ऊँघते कलम घिसते हुए
उत्पीड़न और लाचारी में नहीं जियेंगे।
हम–आकाँक्षा, आक्रोश, आवेग, और
अभिमान में जियेंगे!
असली इन्सान की तरह जियेंगे।

फ्रांस में जनता के एकजुट संघर्ष की एक विजय

लेकिन यह समय जीत के जश्न का नहीं... आने वाले युद्ध की तैयारी का है

● अभिनव

फ्रांस की सरकार द्वारा पेश किए गए 'फर्स्ट एम्प्लॉयमेण्ट काण्ट्रैक्ट' (प्रथम रोज़गार अनुबन्ध) के ख़िलाफ़ फ्रांस की जनता ने एकजुट होकर जो शानदार और विजयी संघर्ष चलाया उससे दुनिया भर में जनता के संघर्षों को एक प्रेरणा मिली है। इसने पूँजीवादी-साम्राज्यवादी लुटेरों को एक ज़बर्दस्त चुनौती और चेतावनी दी है। इस विजय के बाद ही वहाँ के छात्रों और मज़दूरों ने सरकार के अन्य जनविरोधी श्रम कानूनों और सुधारों के ख़िलाफ़ एक नये संघर्ष का एलान कर दिया। लेकिन मीडिया से यह पूरी ख़बर एकदम ग़ायब रही।

फर्स्ट एम्प्लॉयमेण्ट काण्ट्रैक्ट के तहत सरकार पूँजीपतियों के लिए 'हायर एण्ड फायर' ('जब चाहो रखो जब चाहो निकाल बाहर करो') की नीति का इंतज़ाम कर रही थी। इस आन्दोलन की शुरुआत इसी नये कानून के ख़िलाफ़ हुई। 16 मार्च को लगभग 7 लाख लोग इस कानून के ख़िलाफ़ पेरिस की सड़कों पर उतर आए। 81 में से 64 विश्वविद्यालय के छात्रों ने इस आन्दोलन में शामिल होकर इसे देशव्यापी बना दिया। दूसरी तरफ़ मज़दूर संगठन पहले ही देश भर में इसके ख़िलाफ़ सड़कों पर उतर चुके थे। लगभग सारे विश्वविद्यालय और सेकेण्डरी स्कूल इस कानून के ख़िलाफ़ बन्द हो गए। 1968 के छात्र आन्दोलन का दुर्ग बना सारबॉन विश्वविद्यालय इस बार भी आन्दोलन का केन्द्र बन गया। मजबूरन सरकार को इसे ख़ाली कराना पड़ा। इन प्रदर्शनों के बावजूद सरकार ने इन कानूनों को आधिकारिक तौर पर लागू कर दिया। और तो और याक शिराक और प्रधानमन्त्री विलेपां ने इसे रोज़गार बढ़ाने वाला कानून बताया। नतीजा यह हुआ कि आन्दोलन और ज़्यादा भड़क गया। आन्दोलनकारी छात्रों और मज़दूरों के संगठनों ने सरकार को चेतावनी दे दी कि अगर ईस्टर के त्योहार यानी 17 अप्रैल तक अगर यह कानून वापस न लिया गया तो आन्दोलन को और उग्र और व्यापक पैमाने पर चलाया जाएगा। सड़क, रेल, यातायात, कारख़ाने, बन्दरगाह और हवाई अड्डों पर जाम लगना शुरू हो गया। देश ठप सा पड़ने लगा। यह देखकर सरकार भयभीत हो गई और मजबूरी में उसे यह कानून वापस लेना पड़ा। जनता की यह जीत विशेष तौर पर व्यापक और जुझारू छात्र-मज़दूर एकता के बल पर मिली। इस आन्दोलन में विभिन्न छात्र संगठन, ट्रेड यूनियनें, विपक्षी पार्टियाँ और वामपंथी संगठन शामिल थे। लेकिन इस आन्दोलन को चलाने और फिर जिताने वाली असली ताक़त थी छात्रों और मज़दूरों की।

इस आन्दोलन की आर्थिक और सामाजिक पृष्ठभूमि को वैश्विक परिदृश्य में समझने की आवश्यकता है। साथ ही इस आन्दोलन की एक समीक्षा की भी आवश्यकता है।

भूमण्डलीकरण के इस दौर तीसरी दुनिया के देशों की मेहनतकश आबादी तो ख़ास तौर पर देशी और विदेशी पूँजी द्वारा लूटी-खसोटी और निचोड़ी जाती है। लेकिन इस वैश्विक लूट के उन्नत होने के साथ ही साम्राज्यवादियों के लिए यह लूट भी कम पड़ जाती है। साम्राज्यवाद के विकास की शुरुआती मंज़िल में स्थिति कुछ और थी। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में उन्नत पूँजीवादी उपनिवेशवादी देशों ने तीसरी दुनिया के देशों को अपना उपनिवेश बनाया और वहाँ के प्राकृतिक संसाधनों और उजरती श्रम का जमकर दोहन किया और अपने यहाँ ज़बर्दस्त ऐश्वर्य और समृद्धि पैदा की। इस लूट के एक हिस्से से उन्होंने अपने देश के मज़दूरों को तमाम सुविधाएँ दीं और उनके रैडिकलिज़्म को एक व्यवस्थित और योजनाबद्ध प्रक्रिया के जरिये ख़त्म किया। वहाँ एक लेबर अरिस्टोक्रेसी पैदा हुई जो संगठित तो बहुत थी लेकिन व्यवस्था विरोधी नहीं। ऐसा नहीं कि वहाँ गरीब मज़दूरों का कोई तबका नहीं था। लेकिन वह अधिकांश असंगठित, लम्पट सर्वहारा के रूप में था। साथ ही इस लूट के एक हिस्से का इस्तेमाल

असंगठित, लम्पट सर्वहारा के रूप में था। साथ ही इस लूट के एक हिस्से का इस्तेमाल साम्राज्यवादियों ने अपने देश की जनता को रोज़गार और सामाजिक सुरक्षा देने में किया ताकि उनके देश में कभी पूँजीवाद को कोई ख़तरा न पैदा हो। साथ ही दुनिया के मज़दूरों के साथ उनके देश के मज़दूर भाईचारा न महसूस करें इसके लिए उन्होंने उनमें नस्लवाद, श्रेष्ठतावाद और 'व्हाइट मेंस बर्डेन' जैसी प्रतिक्रियावादी सोच को शिक्षा आदि के जरिये भरा।

लेकिन पूँजीवाद का एक नियम होता है। पूँजी या तो विस्तारित होती है या नष्ट हो जाती है। जब तीसरी दुनिया के सभी देशों और अन्य पिछड़े देशों में लूट का साम्राज्य पुख़्ता ढंग से क़ायम हो गया तो फिर अब पूँजी मंगल ग्रह या प्लूटो ग्रह पर तो जाती नहीं! अब उसको लूट की नयी सम्भावनाओं की ज़रूरत पड़ती। यही आज हो रहा है। तीसरी दुनिया को पूरी तरह निचोड़ने के बाद अब वैश्विक पूँजी की लूट की ज़द में धीरे-धीरे उन्नत देशों की जनता भी आएगी। भले ही वहाँ इस लूट की सघनता उतनी न हो। लेकिन वहाँ की राजनीतिक चेतना के अनुसार थोड़ी लूट भी जनता को सड़कों पर उतारने के लिए काफ़ी होगी। जैसा कि फ्रांस में हुआ। कानून के प्रस्तावित होते ही जनता सड़कों पर थी। अब पूँजी के सामने एक भारी संकट है कि लूट के लिए नए बाज़ार और नए मज़दूर वह कहाँ से लाए। तीसरी दुनिया में सम्भावनाएँ लगभग निचोड़ी जा चुकी हैं। उन्नत देशों की जनता में यह बहुत मुश्किल है। यही कारण है कि अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस और आस्ट्रेलिया जैसे देशों में भी अब श्रम कानूनों को ढीला किया जा रहा है और लूट की पृष्ठभूमि तैयार की जा रही है। लेकिन यह पूँजीपतियों के टुकड़ों पर पलने वाले और उनके तलवे चाटने वाले बुद्धिजीवी भी समझ रहे हैं कि यह ख़तरनाक होगा।

यह तो रही बात पूँजी के अन्तकारी रोग (टर्मिनल डिज़ीज़) की। लेकिन पूँजीवाद सिर्फ़ इसी से अपने आप ख़त्म नहीं होगा।

छात्र-मज़दूर एकता की शानदार फ्रांसीसी परम्परा

लगता है फ्रांस की यह परम्परा सी बन गई है कि कोई भी संघर्ष हो मज़दूर और छात्र साथ ही लड़ते हैं। चाहे वह 1968 के व्यापक छात्र संघर्ष की बात हो, या 1995 में हुई देशव्यापी हड़ताल की बात हो या फिर बीच-बीच में होने वाले तमाम छिट-पुट मज़दूर और छात्र संघर्षों की बात हो। जब भी कोई एक सड़क पर उतरता है तो दूसरा अपना झण्डा लिए उसके साथ लड़ने के लिए सड़कों पर उतर जाता है। मज़दूरी बढ़ाने की माँग को लेकर मज़दूर लड़ते हैं तो छात्र उनके साथ आ जाते हैं; फीस वृद्धि के ख़िलाफ़ छात्र लड़ते हैं तो मज़दूर उनके साथ आ जाते हैं। यह एक ऐसी परम्परा है जिससे भारत समेत दुनिया भर की जनता को सीखना होगा। यह एकजुटता प्रेरणादायी है।

क्या था 'फर्स्ट एम्प्लॉटमेण्ट काण्ट्रैक्ट'?

फ्रांस सरकार द्वारा जारी 'फर्स्ट एम्प्लॉयमेण्ट काण्ट्रैक्ट' (प्रथम रोजगार अनुबन्ध) नियोक्ताओं को 26 साल से कम उम्र के कर्मचारियों को जब चाहे रखने और जब चाहे निकालने की खुली छूट देता था।

इस नये कानून के तहत 26 वर्ष से कम उम्र के कर्मचारियों को ट्रायल के तौर पर रखे जाने का प्रावधान था। इस दौरान नियोक्ता बिना कारण बताये कर्मचारियों को निकाल सकता था। यही नहीं, दो साल के बाद यह कानून पुरानें काण्ट्रैक्ट में बदल जाता था जिससे पारम्परिक तौर पर नौकरी की जो सुरक्षा मुहैया करायी जाती थी, वह ख़त्म हो गयी।

सरकार का यह दावा था कि इस नये कानून से सबके लिए रोज़गार के बराबर अवसर पैदा होंगे। यानी अभी रोज़गार के अवसर इसलिए नहीं पैदा हो रहे हैं क्योंकि मालिकों को अपनी मर्ज़ी से लोगों को रखने-निकालने का अधिकार नहीं है। भारत सरकार भी तो इन्हीं तर्कों को आधार पर श्रम के लचीलेपन की बात कर रही हैं और श्रम कानूनों को मालिक पक्षीय बनाने में जुटी है।

दरअसल, भूमण्डलीकरण, उदारीकरण के इस दौर का सूत्र वाक्य ही है – 'हायर एण्ड फायर' यानी जब चाहो काम पर रखो और जब चाहो निकाल दो।

('बिगुल' से साभार)

यह बात ठीक है कि फ्रांस में छात्रों और मज़दूरों की चट्टानी एकता ने सरकार को झुका दिया। इससे दुनिया भर में जनसंघर्षों को एक नयी ऊर्जा मिलेगी। लेकिन यह भी याद रखना होगा कि फ्रांस में उभरा जनान्दोलन एक स्वतःस्फूर्त (स्पाण्टेनियस) आन्दोलन था। सचेतनता का तत्व इसमें कम था। इस संघर्ष में जीत ज़रूर मिली। लेकिन यह भी याद रखना होगा कि हर जीत के बाद छात्र-मज़दूर जीत की ख़ुशी में डूब जाते हैं जबकि जीत और हार दोनों की ही सूरत में पूँजीपति वर्ग अगले हमले की तैयारी में जुट जाता है। जीत मिले या हार, ऐसे सभी जनान्दोलनों का विचारधारा से लैस होना बेहद ज़रूरी है। बिना वैचारिक परिपक्वता के जिस लक्ष्य को लेकर फ्रांस की जनता लड़ रही है वह पूरा नहीं किया जा सकता। दूसरी बात यह कि लड़ाई सिर्फ़ किसी एक सुधार या बेरोज़गारी के ख़िलाफ़ नहीं बल्कि पूरे पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ है। ऐसे में दो चीज़ों के बिना यह आन्दोलन फौरी जीतें तो हासिल कर सकता है लेकिन इस मुद्दे को अन्तिम तौर पर निपटा नहीं सकता—विचारधारा और संगठन, यानी एक क्रान्तिकारी देशव्यापी पूँजीवाद-विरोधी संगठन।

लेकिन फिर आज के विपर्यय और पराजय के दौर में यह संघर्ष एक जनता की एक शानदार विजय है और इससे सीखने की जो सबसे बड़ी बात निकलती है वह यह है कि तमाम जनसंघर्षों को अलग-अलग होकर नहीं बल्कि एकजुट होकर ही मुकाम तक पहुँचाया जा सकता है। इस विजय से एक ओर दुनिया भर के छात्रों और मज़दूरों में ख़ुशी की लहर है वहीं दूसरी ओर लुटेरों का कलेजा पुकपुका रहा है कि कहीं फ्रांस की यह आग दूसरे देशों में भी न फैल जाए। यही कारण है कि इस संघर्ष की विजय के बाद छात्रों ने जिस नये संघर्ष का एलान किया है पूँजीवादी मीडिया ने उसका पूरी तरह ब्लैकआउट कर दिया।

अरब में फँसा अमेरिकी साम्राज्यवाद के रथ का चक्का

● लता

अक्सर ऐसा देखने में आया है कि विश्व साम्राज्यवाद के सारे अन्तरविरोध भौगोलिक और राजनीतिक रूप से एक बिन्दु पर केन्द्रित हो जाते हैं। कोई एक क्षेत्र तमाम अन्तरविरोधों की एक एकल गाँठ जैसा बन जाता है। अरब विश्व पिछले कुछ दशकों से ऐसी ही एक परिघटना का साक्षी बन रहा है। अमेरिकी साम्राज्यवाद के पाँव अरब के रेगिस्तान में गहरे से गहरे धँसते जा रहे हैं। वह जितना निकलने की कोशिश करता है, उतना ही फँसता जाता है। ऐसा भी नहीं है कि अमेरिका मूर्खता में मध्य-पूर्व में फँस गया हो। दिक्कत यह है कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था बुरी तरह पेट्रोल पर निर्भर है। तेल के बिना पूरी अर्थव्यवस्था डगमगा जाएगी। दुनिया के कुल तेल उपभोग में सबसे ज़्यादा हिस्सा अमेरिका का ही है। नतीजतन, मध्य-पूर्व के तेल भण्डार पर प्रभुत्व कायम करना अमेरिका की एक मजबूरी बन जाता है। इस आर्थिक मजबूरी के अलावा एक राजनीतिक मजबूरी भी है। अगर अमेरिका मध्य-पूर्व में अपना प्रभुत्व कायम नहीं करता तो कोई और साम्राज्यवादी शक्ति यह काम करेगी। इस सूरत में कहा जा सकता है कि यह काम रूस-चीन धुरी करेगी। रूस ऐसे प्रयासों में लगा भी रहता है। इसके अलावा अमेरिकी आक्रामक साम्राज्यवादी नीतियों का गणित ही कुछ ऐसा है कि एक बार कहीं नाक घुसा देने के बाद अमेरिका के लिए नाक निकाल पाना असम्भव हो जाता है।

विश्व साम्राज्यवाद के अन्तरविरोध जो अरब विश्व में लम्बे समय से एक गाँठ के रूप में नज़र आ रहे हैं, आज विस्फोटक स्थिति में पहुँच गए हैं। एक ओर इराक में प्रतिरोध-संघर्ष थमने का नाम नहीं ले रहा है, तो दूसरी ओर फ़िलिस्तीन में हमास की विजय से भी मध्य-पूर्व में अमेरिका की स्थिति और डावाँडोल हो गई है। अमेरिका को उम्मीद थी कि इराक़ में शिया-सुन्नी और कुर्द-सुन्नी अन्तरविरोधों का लाभ उठाकर वह अपनी स्थिति को वहाँ मज़बूत बनाए रखेगा। लेकिन ऐसा कर पाना उसके लिए हर दिन के साथ असम्भव होता जा रहा है। एक ओर तो प्रतिरोध-युद्ध में शियाओं का भी एक बड़ा हिस्सा अमेरिका के ख़िलाफ़ शामिल हो गया है, वहीं कुर्दों का भी अब मोहभंग हो रहा है और वे इस बात को समझते जा रहे हैं कि अमेरिका उनका सच्चा हमदर्द और कुर्दिस्तान की माँग का सच्चा हिमायती नहीं है। बल्कि उन्हें इराक़ में अपनी जान बचाने के लिए अमेरिका सुन्नियों के ख़िलाफ़ इस्तेमाल कर रहा है। ईरान के ख़िलाफ़ अमेरिका के रवैये के कारण भी इराक़ के शियाओं का एक हिस्सा अमेरिका के ख़िलाफ़ होते जा रहे हैं। वहीं स्वयं ईरान भी इस कारक को समझ रहा है और मौका पड़ने पर वह इराक़ में अमेरिकी साम्राज्यवाद से नफ़रत करने वाले शियाओं को अमेरिका के ख़िलाफ़ खुलकर और सैन्य रूप में खड़ा कर सकता है। इराक़ में अमेरिका की लाख कोशिशों के बाद भी आज़ादी के लिए लड़ रही इराक़ी जनता के हमले कम होने का नाम नहीं ले रहे हैं। उल्टे बढ़ते जा रहे हैं। खुद एक अमेरिकी जनरल के बयान के मुताबिक, **"हम इस प्रतिरोध को नहीं कुचल सकते। उन्हें जनता का समर्थन हासिल है। हम उन्हें तितर-बितर करते हैं तो वे जनता के बीच खो जाते हैं और फिर से शस्त्र-सज्जित होकर नई ऊर्जा के साथ हम पर हमले शुरू कर देते हैं।"** इस बयान में अमेरिका के सैनिकों का एक भय नज़र आ रहा है जिससे उसी भय की गंध आ रही है जो वियतनाम में गए अमेरिकी सैनिकों में समा गया था।

इराक़ी जनता के अलावा फ़िलिस्तीनी जनता के संघर्ष को कुचलने में भी अमेरिका असफल रहा है। फ़िलिस्तीनी जनता के दमन के कई दशकों के बाद भी अमेरिकी साम्राज्यवाद और इज़रायली जियनवाद के मंसूबे पूरे नहीं हो पा रहे हैं। वहाँ चुनाव में समझौतापरस्त पीएलओ नेतृत्व की पराजय और हमास की विजय से यही बाद जाहिर होती है। हमास एक इस्लामी संगठन है जो अमेरिका और इज़रायल के दमन का सैन्य और जुझारू तरीके से विरोध करता आया है। फ़िलिस्तीनी जनता ने दशकों से जो अमानवीय दमन और उत्पीड़न झेला है उसके कारण हमास उनके बीच लोकप्रिय होता गया। हालाँकि फिलिस्तीनी जनता अपने धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के लिए जानी जाती है। लेकिन फिर भी वह हमास के पक्ष में जाकर खड़ी हुई क्योंकि कारगर ढँग से अमेरिकी साम्राज्यवाद का विरोध और इज़रायली जियनवाद का विरोध वही कर रहा था। दूसरी ओर फ़िलिस्तीनी जनता के सामने था पीएलओ की समझौता-परस्ती और अवसरवाद, उसका नैतिक पतन और भ्रष्टाचार। यह तीसरी दुनिया के रैडिकल बुर्जुआ वर्गों के पतन की उसी पुरानी कहानी का दुहराव था। तमाम देशों में एक दौर में साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ एक वास्तविक संघर्ष चलाने के बाद वहाँ का रैडिकल बुर्जुआ वर्ग समझौता-परस्त हो जाता है और कोई मध्य मार्ग अपनाकर जनता की आकांक्षाओं के साथ ग़द्दारी करता है। निश्चित रूप से पीएलओ की शुरुआत एक ऐसे संघ के रूप में हुई थी जिसमें ईमानदार रैडिकल बुर्जुआ ताकतें, कम्युनिस्ट और अन्य कई विचारधाराओं के लोग थे। लेकिन पीएलओ में मौजूद कम्युनिस्ट भी मध्य वर्गीय रैडिकलिज़्म से ज्यादा कुछ नहीं दे पाए। नतीजतन अमेरिकी साम्राज्यवाद और इज़रायली ज़ियनवाद के ख़िलाफ़ नफ़रत फ़िलिस्तीनी जनता को हमास की ओर ले गयी। दूसरी ओर हमास ने यह साबित किया कि उसने इन्तिफ़ादा से ज्यादा सबक लिये हैं। हमास ने कल्याणकारी नीतियों द्वारा जनता का समर्थन जीता। शिक्षा और चिकित्सा के क्षेत्र में तमाम सुधार किये गए और लगातार जनता का भरोसा जीता गया।

(पेज 21 पर जारी)

सट्टेबाज़ और जुआरी पूँजीवाद

● आशीष

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था विकास के कई मंज़िलों से होकर गुज़री है। इन मंज़िलों के बारे में हम सबने अपनी पाठ्यपुस्तकों में भी पढ़ा है। एक दौर था 'लेसेज़ फेयर' यानी मुक्त प्रतियोगिता का दौर। जो अपने आप ही एकाधिकारी वित्तीय पूँजीवाद के दौर में तब्दील हो जाता है क्योंकि मुक्त व्यापार में सब विजयी नहीं होते, कुछ विजयी होते हैं और बाकी गर्त में चले जाते हैं। एकाधिकारी पूँजीवाद के जन्म के बाद पूँजीवाद कई चरणों से गुज़रा है। लेकिन हम इन गहरी चर्चाओं में नहीं जाएँगे क्योंकि वे इस लेख की सीमाओं का अतिक्रमण कर जाती हैं।

हम हाल ही में स्टॉक एक्सचेंज में आई दो बड़ी गिरावटों की चर्चा करते हैं। पहले 17 मई 2006 को एक काला गुरुवार आया जिस दिन सेंसेक्स लगभग पौने नौ सौ अंक गिर गया। यह भारतीय स्टॉक एक्सचेंज में सूचकांक गिरावट का नया रिकॉर्ड था। लेकिन यह रिकॉर्ड ज्यादा जी नहीं पाया और आने वाले सोमवार यानी 22 मई को ही यह टूट गया। इतिहास काला सोमवार का साक्षी बना जब सूचकांक 1111 अंक नीचे गिर गया! भाई साहब! पूरे दलाल मार्ग पर पहले अफरा-तफरी और फिर सन्नाटा, फिर अफरा-तफरी, फिर सन्नाटा! तबीयत हरी हो गई थी सबकी वहाँ पर! 17 मई 2006 से पहले का रिकॉर्ड भी ज्यादा पुराना नहीं था। वह यूपीए की सरकार आने के साथ ही कायम हुआ था, ठीक दो साल पहले 17 मई 2004 को। उस दिन भी सेंसेक्स करीब साढ़े आठ सौ अंक नीचे गिरा था। और जनाब उसके पहले के रिकॉर्ड का श्रेय जाता है महान दलाल हर्षद मेहता को! जी हाँ! 1992 में भी सेंसेक्स कुछ ऐसे ही औंधे मुँह गिरा था। सेंसेक्स का अर्थ होता है सेंसिटिव इण्डेक्स जो अग्रणी कम्पनियों के बाज़ार मूल्य को प्रदर्शित करता है, यानी अर्थव्यवस्था और निवेश की सेहत को दिखलाता है। ये तो बड़ी-बड़ी गिरावट की घटनाएँ थीं, लेकिन नयी आर्थिक नीतियों के लागू होने और विदेशी संस्थागत निवेशों की शुरुआत के साथ ही छोटी-छोटी गिरावटों के कुछ-कुछ समय पर बड़ी गिरावटों का एक सिलसिला शुरू हो गया था। जिसकी ताज़ा कड़ियाँ थीं काला गुरूवार और काला सोमवार।

लेकिन ऐसा होता ही क्यों है? मन्दी क्यों आती है? बाज़ार क्यों गिरता है? अपनी "अन्तिम विजय" (??!!) के बाद भी पूँजीवाद को दस्त, कब्ज़, बदहज़मी और गैस की शिकायत क्यों बनी रहती है?

दिक्कत को पूँजीपतियों के महान चिरस्मरणीय मुनीम श्री श्री जॉन मेनार्ड कीन्स ने ही समझ लिया था और अपने आकाओं को चेताया भी था कि गुरू सम्भल जाओ! लेकिन गुरू जी की आँखों में तो मुनाफे की पट्टी बँधी हुई है। दरअसल; पूरे पूँजीवाद का चरित्र बुरी तरह सट्टेबाज़ हो चुका है। आज पूरे विश्व की समूची पूँजी का 80 फीसदी से भी ज्यादा हिस्सा शेयर मार्केट और सट्टेबाज़ी में लगा हुआ है। एक ऐसी पूँजी जो भौतिक रूप से कहीं नहीं है और जो अफवाहों और अटकलों के साथ अस्तित्व में आती और जाती है। सिर्फ 15 से 20 फीसदी हिस्सा ऐसा है जो वास्तविक उत्पादन में लगी पूँजी कही जा सकती है। शेयर बाज़ार और सट्टेबाज़ी फटाफट मुनाफ़ा कमाने का एक आसान जरिया बनते हैं। नतीजतन, पूँजी का 80 से 90 फीसदी इसी अटकलबाजी, सट्टेबाज़ी और शेयर बाज़ार में लग जाते हैं। हमेशा से ऐसा नहीं था। 1929-31 की महामन्दी के पहले उत्पादक पूँजी ही ज्यादा थी, लेकिन धीरे-धीरे पूँजी का अनुत्पादक चरित्र बढ़ता जा रहा था और सट्टा पूँजी फूलती जा रही थी। इसी परिघटना पर चेताते हुए कीन्स ने कहा था कि अगर औद्योगिक पूँजी की धारा पर सट्टा पूँजी एक बुलबुले के समान हो तो कोई ख़ास चिन्ता की बात नहीं है। लेकिन अगर औद्योगिक पूँजी ही सट्टा पूँजी की धारा पर एक बुलबुला बन जाए तो मामला गड़बड़ हो सकता है। और आज यही हो रहा है। पूरा पूँजीवादी बाज़ार और अर्थतंत्र और उससे जुड़े तमाम छोटे-बड़े निवेशक सट्टा पूँजी की दया पर पल रहे हैं। मामला गड़बड़ा चुका है! चिदम्बरम महोदय चाहे कितना भी आश्वासन और ढाढ़स बँधा लें, ये मन्दियों का चक्र जारी रहेगा। अनुत्पादक नरभक्षी पूँजीवाद छोटे निवेशकों को निगलता रहेगा और आम ग़रीब आबादी को आर्थिक अस्थिरता, महँगाई, बेरोज़गारी, भुखमरी और बदहाली का तोहफ़ा देता रहेगा। यह पूँजीवाद का असाध्य रोग है—पहले अतिउत्पादन, फिर पूँजी का अनुत्पादक और सट्टेबाज़ होते जाना, और फिर पूरे तंत्र का सट्टे और अफ़वाह के रहमो-करम पर आ जाना। एक बार, दो बार , तीन बार ऐसे संकट से युद्ध से उबरा जा सकता है। बार-बार नहीं। पिछले पन्द्रह वर्षों में हमने तमाम युद्ध देखे हैं लेकिन कोई भी पूँजीवाद के संकट का हल नहीं कर पा रहा है। वह बस पेन रिलीफ़ है। मर्ज़ का इलाज नहीं। इस व्यवस्था के चौधरियों के पास खुद इस बीमारी का कोई इलाज नहीं है। क्योंकि वे भी अपनी मनमर्जी इस भूमण्डलीकत पूँजीवादी साम्राज्यवादी व्यवस्था को नहीं चलाते हैं। उसकी अपनी एक गतिकी है और उसमें ये संकट अंतर्निहित हैं। ये मन्दी पूँजीवादी विश्व व्यवस्था का अंतकारी रोग है जो उसके साथ ही ख़त्म होगा। और जाहिर है कि कोई भी चीज़ अपने आप ख़त्म नहीं होती। उसे ख़त्म करना पड़ता है।

●

यूपीए सरकार का तीसरा बजट

ग़रीबों की दुहाई और अमीरों को मलाई

● अजय, पवन

हाल ही में यूपीए सरकार का तीसरा बजट पास हुआ। इसे पेश करते हुए पी. चिदम्बरम ने कहा कि 'हमारी सरकार एक दयालु सरकार है' और इसमें 'आम आदमी' शब्द कम-से-कम 45 से 50 बार आया होगा। लेकिन बजट के एक हल्के विश्लेषण से ही यह बात समझ में आ जाती है कि बजट में आम आदमी की दुहाई चाहे जितनी भी दी गई हो इसमें भूमण्डलीकरण की उसी प्रक्रिया को व्यवस्थित ढँग से आगे बढ़ाया गया है, जो आम आदमी को तबाह कर रही है।

भूमण्डलीकरण को बहुत तेज़ करने वाला कोई कदम पूँजीपतियों के काबिल मुनीम चिदम्बरम ने नहीं उठाया है। कारण यह था कि उस समय तक केरल और बंगाल के चुनाव नहीं बीते थे। आख़िर संसदीय वामपंथी शेखचिल्लियों को भी तो मुँह दिखाने लायक छोड़ना था! नतीजतन, इस बार के बजट में आयकर और निगम कर ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। छह में से एक चीज़ रखने वालों के आयकर रिटर्न भरने की अनिवार्यता को भी ख़त्म कर दिया गया। मतलब मध्यम वर्ग की भी बल्ले-बल्ले और पूँजीपतियों की भी! इससे बंगाल और केरल के चुनाव में वामपंथियों को ख़ास फ़ायदा मिला। वहाँ का पढ़ा-लिखा शहरी मध्यवर्ग इस लॉलीपॉप को चूसते-चूसते अपनी चहेती पार्टी को वोट दे आया। इस बार किसी बड़े विनिवेश की भी घोषणा नहीं हुई। साथ ही श्रम कानूनों में बदलाव को भी चिदम्बरम अभी टाल गए। इससे संगठित क्षेत्र के मज़दूरों का गुस्सा क़ाबू में रहेगा और उनका वोट संसदीय बात-बहादुरों को मिल जाएगा।

लेकिन जिस ग़रीब की दुहाई बार-बार दी गई है वास्तव में उसके लिए सरकार ने क्या किया है? राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार योजना, सर्वशिक्षा अभियान, मिड डे मील आदि, जिसका कोई विशेष लाभ ग़रीबों तक नहीं पहुँच पाता है और अगर बहुत छूट देकर, उदारता के साथ सोचा जाय तो उन्हें यही कहा जा सकता है—असामान्यतः अपर्याप्त! राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार योजना के मद में 14300 करोड़ रुपये आबण्टित किये गए हैं। लेकिन वहीं सम्पूर्ण ग्रामीण रोज़गार योजना पर खर्च में 4950 करोड़ रुपये की कटौती की गई है। काम के बदले अनाज कार्यक्रम को पूरी तरह बन्द कर दिया गया है यानी कि 4050 करोड़ रुपये की कटौती। यानी खर्चों में कुल कटौती 9000 करोड़ रुपये। इस प्रकार राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार योजना पर ख़र्च 10170 करोड़ बढ़ाया गया तो चोर दरवाज़े से 9000 करोड़ रुपये का ख़र्च कम कर दिया गया। वहीं यह योजना लागू होते ही देश के 200 जिलों में लगभग 77 लाख लोगों ने आवेदन किया। खुद सरकार के अनुसार यह असली संख्या का केवल 40 प्रतिशत है। यानी आने वाले दिनों में यह संख्या 2 करोड़ तक पहुँच सकती है। अब 14300 करोड़ रुपये में 2 करोड़ लोगों को साल भर में 100 दिन का रोज़गार कैसे मिलेगा, यह बात या तो अल्ला मियाँ जानते हैं या मक्कार मुनीम चिदम्बरम! इस योजना को सफल बनाने के लिए मोटे तौर पर 25 से 30 हज़ार करोड़ रुपये की ज़रूरत पड़ेगी।

दरअसल, चिदम्बरम महोदय की पूरी चिन्ता के केन्द्र में था बजट घाटा और वित्तीय घाटा कम करना। बजट घाटे को जीडीपी के 2.1 प्रतिशत और वित्तीय घाटे को जीडीपी के 3.8 प्रतिशत तक लाने के लिए श्रीमान मुनीम को पूँजीपतियों की शाबाशी भी खूब मिली। लेकिन यह सम्भव कैसे हुआ है? जाहिर है खर्चे कम करके। किन मदों में? सार्वजनिक क्षेत्र में किये जाने वाले निवेश के मद में। यानी वे मद जिनसे आम आदमी को राहत मिलती है, जैसे सरकारी अस्पताल, स्कूल, आदि, उनमें कटौती करके और दो-तीन चीज़ों को करों के दायरे में लाकर बजट घाटे को कम करने की कवायद की गई है। ये तो गज़ब का आम आदमी का बजट है!!

साथ ही चिदम्बरम मुनीम ने आम आदमी पर क्या-क्या अहसान किये हैं, सुनिये। छोटी कारें, कोल्ड ड्रिंक, 250-750 रुपये तक के जूते आदि सस्ते होंगे। अब कौन सा आम आदमी मारूती ख़रीदता है यह तो मुनीम जी ही बता सकते हैं। हाँ, कुछ लोग खाए-पिये मध्यम वर्ग को ही आम आदमी मानते हैं। उसके नीचे के लोगों के लिए शायद वे किसी नयी संज्ञा के आविष्कार में लगे हुए हैं! यहाँ तक कि विश्वविद्यालयों के 25-30 हज़ार पाने वाले प्रोफेसर, मध्यम दर्जे के सरकारी नौकरशाह आदि भी रामजाने किस पैमाने से अपने आपको "आम आदमी" मानते हैं! बहरहाल, अगर आम आदमी यही हैं, तब तो मुनीम जी ने वाकई इनके लिए ख़ैराती खाता खोल दिया है! लेकिन शायद हिन्दी भाषा के सीमित ज्ञान के कारण या राजनीतिक नादानी के कारण इस टिप्पणी का लेखक आज तक यह समझता आया था कि आम आदमी का मतलब होता है मेहनतक़श आबादी, निम्न मध्य वर्ग, किसान और मज़दूर आबादी!!

आम आदमी का नाम लेकर चिदम्बरम ने सेवा किसकी की है? जवाब साफ़ है—पूँजीपतियों की। अनेक गैर कृषि उत्पादों पर से आयात शुल्क 16 प्रतिशत से घटाकर 12.5 प्रतिशत कर दिया गया। इससे देशी पूँजी को विदेशी मालों से जो प्रतिस्पर्द्धा झेलनी पड़ेगी उससे तो वह दुखी है लेकिन पूँजीगत मालों से सस्ते होने से वह अपने उद्योगों को और तेज़ी से आधुनिकीकृत कर पाएगी, इसकी खुशी उसे कहीं ज्यादा है। बड़े पूँजीपतियों के लिए रास्ता और साफ़ करने के लिए 180 और वस्तुओं को लघु उद्योगों के लिए आरक्षित सूची से बाहर कर दिया है। इसकी एवज़ में उनके कर्ज़ों में थोड़ी कटौती करने की बात कही गई है, लेकिन कहने की ज़रूरत नहीं कि इससे लघु उद्योगों का बच पाना सम्भव नहीं है और पूँजीवाद का वही जंगल राज यहाँ चलेगा—बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है।

कहानी

नन्ही बेस्सी

मार्क ट्वेन

1908

आलोचनात्मक यथार्थवाद की धारा की अभिव्यक्तियाँ उतने ही किस्म की थीं जितने किस्म के आलोचनात्मक यथार्थवादी थे। सब अनूठे। लेकिन इनमें भी मार्क ट्वेन का स्थान अद्वितीय है। मार्क ट्वेन ने सम्पत्ति-केन्द्रित समाज के मूल्यों, संस्कृति और रूढ़ियों पर चोट की।

वह आलोचनात्मक यथार्थवाद की कोई कड़ी न होकर उसके ऐसे पुरोधा हैं जो स्वयं एक ध्रुव तारे के समान हैं।

आज हमारे समाज में जैसी रूढ़ियाँ हैं, उसके मद्देनज़र हम महसूस करते हैं कि मार्क ट्वेन जिस तीखी और मारक शैली में रूढ़ियों पर चोट करते हैं, उन्हें यहाँ पढ़ने का एक विशेष महत्व है। भारतीय समाज उपभोक्ता सामग्रियों के इस्तेमाल में तो अव्वल है, लेकिन अपनी रूढ़ियों और दकियानूसी विचारों में भी उसे अव्वल कहा जा सकता है। ऐसे में मार्क ट्वेन की ये दो कहानियाँ विशेष तौर पर प्रासंगिक हैं। इन कहानियों में नैतिकता के आदर्श और असल ज़िन्दगी के फर्क को दिखला कर, खोखली नैतिक शिक्षाओं पर चोट की गई है।

-सम्पादक

अध्याय - 1

नन्ही बेस्सी ईश्वर की सहायता करेगी

नन्ही बेस्सी करीब तीन साल की थी। वह एक अच्छी बच्ची थी। उसमें कोई छिछलापन या तुच्छता नहीं थी। वह चिन्तनशील और विचारशील थी और चीज़ों के पीछे के कारण को ढूँढने में और उनमें सामंजस्य बैठाने में लगी रहती थी। एक दिन उसने कहा –

"अम्मा, यहाँ इतनी तकलीफ़ें, दुःख और परेशानियाँ क्यों हैं? आखिर इनका क्या काम है?"

यह एक आसान प्रश्न था, और इसका उत्तर देने में अम्मा को कोई दिक्कत नहीं पेश आई।

"यह सब हमारे भले के लिए है, मेरी बच्ची। ईश्वर अपने विवेक और दयालु प्रवृत्ति से ये तकलीफ़ें हमें देता है ताकि हम अनुशासित हो सकें, और बेहतर बन सकें।"

"क्या इन तकलीफ़ों को *वह* भेजता है?"

"हाँ।"

"क्या सारी तकलीफ़ों को *वह ही* भेजता है?"

"हाँ, प्यारी, सारी तकलीफ़ों को। उनमें से एक भी संयोग से नहीं आती। सिर्फ वही उन्हें भेजता है, और हमेशा इसलिए कि वह हमें प्यार करता है, और हमें बेहतर बनाता है।"

"यह अजीब नहीं है?"

"अजीब? क्यों, नहीं, मैंने इस तरह कभी नहीं सोचा। मैंने कभी किसी को इसे अजीब कहते नहीं सुना। मुझे तो यह हमेशा नैसर्गिक, सही, विवेकपूर्ण और सबसे दयावान और करुणावान लगा है।"

"इस तरह सबसे पहले किसने सोचा था, अम्मा? क्या तुमने?"

"ओह, नहीं, बेटी, मुझे ऐसा सिखाया गया था।"

"तुम्हें ऐसा किसने सिखाया था, अम्मा?"

"क्यों, असल में, मैं नहीं जानती—मुझे याद नहीं आ रहा। मेरे ख़्याल से मेरी माँ ने; या प्रवचनदाता ने। लेकिन यह तो ऐसी चीज़ है जिसे हर कोई जानता है।"

"लेकिन यह फिर भी अजीब लगता है। क्या ईश्वर ने ही नॉरिस को टाइफस दिया था?"

"हाँ।"

"किसलिए?"

"क्यों, उसे अनुशासित करने और अच्छा बनाने के लिए।"

"लेकिन वह तो मर गया अम्मा, इसलिए यह तो उसे अच्छा *नहीं बना सका।*"

"अच्छा, तो, फिर मेरे ख़्याल से यह किसी और वजह से होगा। चाहे कोई भी वजह हो, हम इतना जानते हैं कि वह कोई *वाजिब* वजह होगी।"

"तुम्हारे विचार में यह वजह क्या थी, अम्मा?"

"ओहो, तुम इतने सवाल करती हो! मेरा ख़्याल है कि यह उसके माता-पिता को अनुशासित करने के लिए था।"

"तब तो यह सही नहीं है, अम्मा। उन लोगों के लिए उस बेचारे *की* जिन्दगी क्यों छीनी जाए, जब वह कुछ नहीं कर रहा था?"

"ओहो, मुझे नहीं मालूम! मुझे बस इतना पता है कि यह किसी अच्छी

और विवेकपूर्ण और दयावान वजह से हुआ।"

"कौन सी वजह, अम्मा?"

"मेरे ख़्याल से—मेरे ख़्याल से—देखो, यह एक निर्णय था; यह उन्हें उनके किसी पाप की सज़ा देने के लिए था।"

"लेकिन सज़ा जिसे मिली वह तो *बिली* था, अम्मा। क्या यह सही है?"

"निश्चित रूप से, निश्चित रूप से। ईश्वर ऐसा कुछ नहीं करता जो सही, विवेकपूर्ण और दयावान न हो। प्यारी बच्ची, तुम अभी ये बातें नहीं समझ सकती, लेकिन जब तुम बड़ी हो जाओगी तो समझ जाओगी, और जान जाओगी कि ये न्यायपूर्ण और विवेकपूर्ण है।"

क्षण भर के विराम के बाद :

"क्या ईश्वर ने ही उस अजनबी पर घर की छत को गिरा दिया था जो आग में से अपाहिज बुढ़िया को बचाने की कोशिश कर रहा था?"

"हाँ, मेरी बच्ची। *रुको*! यह मत पूछना कि क्यों, क्योंकि मैं नहीं जानती। मैं बस इतना जानती हूं कि यह किसी न किसी को अनुशासित करने के लिए था, किसी पर फैसला था, या ईश्वर ने अपनी शक्ति दिखाने के लिए ऐसा किया था।"

"वह शराबी जिसने मिसेज वेल्थ के बच्चे को काँटा घोंप दिया जब —"

"उस पर ध्यान मत दो, तुम्हें ब्योरों में जाने की ज़रूरत नहीं है। *इतना* तो निश्चित है कि वह उस बच्चे को अनुशासित करने के लिए था। ख़ैर।"

"अम्मा, मि. बर्गेस ने अपने प्रवचन में कहा था कि हमें कॉलरा, टाइफाइड और लॉकजा जैसी हज़ारों बीमारियाँ देने के लिए करोड़ों सूक्ष्म जीव हममें भेजे जाते हैं—अम्मा, क्या ईश्वर उन्हें भेजता है?"

"ओह, बिल्कुल मेरी बच्ची, निश्चित रूप से। जाहिरा तौर पर।"

"किसलिए?"

"ओहो, हमें *अनुशासित* करने के लिए! क्या मैं बार-बार तुम्हें यह बता नहीं चुकी हूँ?"

"यह तो भयंकर क्रूरता है, अम्मा! और मूर्खता भी! अगर मैं—"

"हश, ओह, *हश*! क्या तुम क़हर बरपा करना चाहती हो?"

"अम्मा तुम्हें पता है, पिछले सप्ताह बिजली *गिरी* और उसने नए चर्च को जला डाला। क्या यह चर्च को अनुशासित करने के लिए था?"

(थककर)। "ओह, मेरे खयाल से, हाँ।"

"लेकिन इससे एक सुअर मारा गया जो कुछ नहीं कर रहा था। क्या यह सब उस सुअर को अनुशासित करने के लिए किया गया था, अम्मा?"

"प्यारी बच्ची, क्या तुम थोड़ी देर बाहर जाकर नहीं खेलना चाहोगी? अगर तुम चाहो तो..."

"अम्मा, जरा सोचो! मि. होलिस्टर कहते हैं कि एक भी चिड़िया या साँप या किसी भी दूसरे जीव की किसी से दुश्मनी नहीं है, कि ईश्वर ने उन्हें काटने या दौड़ाने और सताने, और मार डालने, और खून चूसने और इस तरह उसे अनुशासित करने और अच्छा और धार्मिक बनाने के लिए उन्हें भेजा है। माँ, क्या यह सच है—क्योंकि अगर यह सच है, तो मि. होलिस्टर इस पर हँसते क्यों हैं?"

"वो होलिस्टर एक बदनाम आदमी है, और मैं चाहती हूँ कि तुम उसकी बातें मत सुना करो।"

"क्यों अम्मा, वह बहुत दिलचस्प हैं और अच्छा बनने की कोशिश करते हैं। वह कहते हैं कि ततैये मकड़ियों को पकड़कर उनके जालों में घुसा देते हैं—*ज़िन्दा*, अम्मा!—और वे दिनों-दिन वहीं रहती हैं और तड़पती रहती हैं, और भूखे ततैये सारे समय उनकी टाँगें चबाते रहते हैं और उनके पेट कुतरते रहते हैं, ताकि वे उन्हें अच्छा और धार्मिक बना सकें और वे भगवान की उसकी अनन्त दयाओं के लिए प्रशंसा करें। मुझे लगता है मि. होलिस्टर बहुत प्यारे हैं और हमेशा इतने उदार रहते हैं; क्योंकि जब मैंने उनसे पूछा कि क्या वह कभी किसी मकड़ी से ऐसा बर्ताव करेंगे, तो उन्होंने कहा कि अगर उन्होंने ऐसा किया तो उन्हें नर्क नसीब होगा; और फिर वह..."

"मेरी बच्ची! ओह, भगवान की ख़ातिर..."

"और अम्मा, वह कहते हैं कि मकड़ी को मक्खी को पकड़ने और अपने विषैले दाँत उसकी अँतड़ियों में घुसा देने और उसका खून चूसते जाने के लिए नियुक्त किया गया है, ताकि उसे अनुशासित करके ईसाई बनाया जा सके; और जब इस तकलीफ़ और पीड़ा से मक्खी अपने पंख फड़फड़ाती है, तो तुम उसकी कृतज्ञ आँखों में देख सकती हो कि वह सारी अच्छाइयों के दाता को धन्यवाद दे रही है—वेल, मि. होलिस्टर कहते हैं कि वह बस अपनी इज़्ज़त बचाती है; और वह यह भी..."

"ओफ़, तुम बात करने से थकोगी नहीं क्या! अगर तुम बाहर जाकर खेलना चाहती हो तो..."

"अम्मा, वह तो खुद कहते हैं कि सारी दिक्कतें और तकलीफ़ें और दुर्गतियाँ और सड़े हुए रोग और भयानक चीज़ें और बुरी चीज़ें हमें अनुशासित करने के लिए दया और उदारता के कारण भेजी जाती हैं; और वह कहते हैं कि ईश्वर की हर सम्भव तरीके से *मदद करना* हर माँ-बाप का कर्त्तव्य है। और वह कहते हैं कि महज हड़काने और कोड़े लगाने से वे यह काम नहीं कर सकते, क्योंकि इससे बात नहीं बनेगी, ये कमज़ोर कदम हैं और किसी काम के नहीं है—ईश्वर का तरीका सबसे अच्छा है, — हर किसी को अनुशासित करना, उन्हें अपाहिज बना देना और मार डालना, हर माता-पिता का फर्ज़ बल्कि हर *व्यक्ति* का फर्ज़ है; उन्हें हर किसी को भूख से तड़पाना चाहिए, और उन्हें जमा डालना चाहिए, रोगों से सड़ा डालना चाहिए, और उन्हें खून और चोरी करने और बेइज़्ज़त और बदनाम होने पर मजबूर कर देना चाहिए; और वह कहते हैं कि हमें और जानवरों को अनुशासित करने के लिए ईश्वर द्वारा किया गया आविष्कार अब तक कि सबसे शानदार तरकीब है, और कोई मूर्ख भी इससे अच्छी युक्ति नहीं खोज सकता। अम्मा, एडी भइया को इसी तरह अनुशासित

किए जाने की ज़रूरत है; और मैं जानती हूँ कि तुम उसके लिए चेचक, खुजली, डिप्थीरिया, हड्डी-क्षय, हृदय रोग और क्षय रोग जैसी बीमारियाँ कहाँ से ला सकती हो, और—अरे, प्यारी अम्मा तुम बेहोश हो गयी! मैं दौड़कर मदद के लिए जाती हूँ। अब इस गर्म मौसम में शहर में रहने का *यह* फल मिला।"

अध्याय - 2

मनुष्य की रचना

अम्मा – ढीठ बच्ची, क्या तुम अभी भी उस अधम नीच होलिस्टर से मिलती रहती हो?

बेस्सी – अम्मा, वह बहुत दिलचस्प हैं, हालाँकि थोड़े-से बदमाश हैं, और मैं दिलचस्प लोगों को पसन्द करने से खुद को रोक नहीं पाती। हमारे बीच यह बातचीत हुई :

होलिस्टर – बेस्सी, फर्ज करो कि तुमने थोड़ा मांस, थोड़ी हड्डी और रोएँ लिए, और उसे एक बिल्ली बनाई और उसे कहा कि अब तुम किसी जीव के प्रति निर्दयी नहीं रहोगे, वरना तुम्हें सज़ा और मौत दी जाएगी। और मान लो कि बिल्ली ने इस आदेश का पालन नहीं किया, एक चूहे को पकड़कर तड़पाया और उसे मार दिया। तुम उस बिल्ली के साथ क्या करोगी?

बेस्सी – कुछ नहीं।

होलिस्टर – क्यों?

बेस्सी – क्योंकि मैं जानती हूँ कि बिल्ली क्या कहेगी वह कहेगी यह तो मेरा स्वभाव है। मैं इसमें कुछ नहीं कर सकती; मैंने अपना स्वभाव नहीं बनाया है, *तुमने* बनाया है। इसलिए मैंने जो किया है उसके लिए तुम ज़िम्मेदार हो—मैं नहीं। मैं इसका जवाब नहीं दे सकती, मि. होलिस्टर।

होलिस्टर – फ्रैंकेस्टाइन और उसके दैत्य के साथ भी यही मामला है।

बेस्सी – वह क्या है?

होलिस्टर – फ्रैंकेस्टाइन ने थोड़ा मांस, हड्डी और खून लिया और उससे एक आदमी बना दिया; वह आदमी भाग गया और हर जगह बलात्कार, डकैती और खून करता घूमने लगा। फ्रैंकेस्टाइन भयाक्रान्त हो गया और उसने निराशा में कहा, '*मैंने* उसे बनाया, बिना उसकी सहमति लिये, और इस तरह वह जो भी अपराध करता है उसका ज़िम्मेदार *मैं* हूँ। अपराधी *मैं* हूँ, वह बेकसूर है।'

बेस्सी – निश्चित रूप से वह सही था।

होलिस्टर – मेरा नतीजा भी यही है। यही बात ईश्वर और मनुष्य के लिए और तुम्हारे और बिल्ली के लिए भी सही है।

बेस्सी – ऐसा कैसे?

होलिस्टर – ईश्वर ने मनुष्य को बिना उसकी सहमति के बनाया और उसका स्वभाव भी बनाया; उसको फ़रिश्तों जैसा बनाने की बजाय दुष्ट बनाया और फिर कहा, 'फ़रिश्तों-सा बनो, वरना मैं तुम्हें सज़ा दूँगा और तबाह कर डालूँगा। लेकिन इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता, चाहे जो हो, आदमी जो भी करता है,

(पेज 33 पर जारी)

युवा रचनात्मता शिविर का आयोजन

(पेज 32 से जारी)

लेकिन आज देश में मनुष्य और प्रकृति के बीच में मुनाफ़े की दीवार खड़ी है। मज़दूरों से 14-18 घण्टे काम कराया जाता है। अगर उनसे 6-6 घण्टा काम लिया जाय तो रोज़गार के अवसर तिगुने हो जाते हैं। विकास कार्यों की इस देश में इतनी सम्भावनाएँ हैं; अगर इस काम को हाथ में लिया जाय तो रोज़गार भारी मात्रा में पैदा हो सकते हैं। लेकिन एक पूँजीवादी व्यवस्था में इन कामों में लाभ न होने के कारण और पूँजी निवेश विकास की पूर्वशर्त होने के कारण ये काम नहीं होते; नतीजा—न विकास होता है और न ही रोज़गार पैदा होते हैं।

इस सामूहिक विचार-विमर्श चक्र के बाद एक सामूहिक अध्ययन चक्र शुरू हुआ जिसमें भगत सिंह व भगवती चरण बोहरा द्वारा लिखित **नौजवान भारत सभा, लाहौर का घोषणापत्र** का सामूहिक अध्ययन किया गया।

फिर एक खेल खेला गया जिसमें पर्चियाँ बनाकर वितरित कर दी गईं। हर पर्ची में कोई न कोई दिलचस्प और मज़ेदार गतिविधि दर्ज थी। जिसकी पर्ची में जो लिखा था उसे वह करके दिखाना था। इस खेल का सभी ने खूब आनन्द उठाया।

इसके बाद **नौभास** के प्रसेन का वक्तव्य हुआ जिसका विषय था – **नौजवान और सामाजिक रूढ़ियाँ**। प्रसेन ने अपनी बात रखते हुए कहा कि आज कूपमण्डूकता, अंधविश्वास और सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने में नौजवानों को पहल लेनी होगी और मिसाल कायम करनी होगी। प्रसेन ने राहुल सांकृत्यायन के उस उद्धरण की याद दिलायी जिसमें उन्होंने कहा है आज बाह्य क्रान्ति से अधिक आवश्यकता मानसिक क्रान्ति की है और हमें अपने दोनों हाथों में तर्क की तलवार नचाते हुए सामाजिक रूढ़ियों और कूपमण्डूकता के बन्धनों को काट डालना होगा और तभी इस समाज का उत्थान होगा। प्रसेन ने कहा कि हमें तार्किकता के प्रचार-प्रसार पर भी पर्याप्त ज़ोर देना होगा।

इसके बाद **मैजिक शो** हुआ जिसमें पवन और योगेश ने ढोंगी बाबा बनकर दिखलाया कि तथाकथित बाबा और सन्त लोगों को कैसे बेवकूफ बनाते हैं। उन्होंने ऐसी कई तरकीबें दिखलाईं और उनके पीछे का तर्क दिखलाया, जैसे, कपड़े में मंत्र पढ़कर आग लगाना, नारियल में आग लगाना, रस्सी को सीधा हवा में टाँगना, जीभ से सरिया आर-पार करना, आदि।

इसके बाद रूसी क्रान्ति पर बनी फिल्म **वे दस दिन जब दुनिया हिल उठी** का प्रदर्शन किया गया। इसमें रूसी क्रान्ति के पूरे इतिहास को दिखलाया गया था और विश्व इतिहास में उसके महत्व को समझाया गया था।

इसके बाद समूहगान हुआ और फिर एक **मशाल जुलूस** निकाला गया जिसमें करीब 100 लोग मशालों के साथ करावल नगर क्षेत्र के विभिन्न मुहल्लों में गये और भगत सिंह के संकल्प को ताजा करने की शपथ ली गई और यह कसम खाई गई कि हम तब तक संघर्ष करते रहेंगे जब तक भगत सिंह और उनके साथियों के सपनों के भारत का निर्माण नहीं कर लेते।

इसके बाद रात में शिविर स्थल पर 1 बजे से **दि लीजेण्ड ऑफ़ भगत सिंह** नामक फिल्म का प्रदर्शन हुआ और शपथ ग्रहण के साथ शिविर का समापन हुआ।

अरब में फँसा अमेरिकी साम्राज्यवाद के रथ का चक्का

(पेज 15 से जारी)

दूसरी ओर फ़िलिस्तीन को बाहर से अमेरिका के प्रतिद्वन्द्वियों से भी समर्थन मिल रहा है। यूरोपीय संघ ने हमास के आने के बाद फ़िलिस्तीन को वित्तीय सहायता बंद की तो रूस ने तत्काल हमास को वित्तीय सहायता देनी शुरू कर दी।

एक बात अब बहुत साफ़ तौर पर दिखलाई पड़ रही है। मध्य-पूर्व की जनता किसी भी दमन की सूरत में अमेरिकी साम्राज्यवाद के सामने घुटने टेकने वाली नहीं। एक और सम्भावना से भी इंकार नहीं किया जा सकता। इराक़ी और फ़िलिस्तीनी जनता का जो भाईचारा है वह एक सम्पूर्ण अरब की अमेरिका-ब्रिटेन विरोधी धुरी में भी तब्दील हो सकता है। इराक़ी जनता के स्वतंत्रता-संघर्ष और फ़िलिस्तीनी जनता के संघर्ष को पूरे अरब की आम जनता का ज़बरदस्त समर्थन और हमदर्दी हासिल है। एक बाधा यह है कि नेतृत्वकारी शक्ति के रूप में सर्वहारा वर्ग इन दोनों देशों में कमज़ोर है। लेकिन अगर सर्वहारा के रूप में नेतृत्वकारी शक्ति कमज़ोर भी रहती है तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि स्थितियाँ बदलेंगी नहीं। क्योंकि जब अन्तरविरोधों में विस्फोट होता है तो जो शक्तियाँ तैयार नहीं होतीं वे तैयार हो जाती हैं, नहीं तो उनकी जगह कोई और शक्ति ले लेती है।

आज अरब विश्व और उसमें अमेरिकी घुसपैठ के ख़िलाफ़ जनता की गहरी घृणा और नफ़रत को देखते हुए एक बात कही जा सकती है कि अमेरिका मध्य-पूर्व में अपनी कब्रगाह बनाने में लगा हुआ है। और अब खाड़ी के पार जिस तरह वह ईरान से उलझ रहा है उसे देखकर एक सम्भावना यह भी उभर रही है उसकी स्थिति यहाँ वियतनाम से भी बुरी हो जाय। अमेरिका में बैठे समझदार नीति-निर्माता भी यह समझ रहे होंगे लेकिन दिक्कत यह है कि साम्राज्यवाद को साम्राज्यवादी नहीं संचालित करते हैं बल्कि साम्राज्यवाद यानी वित्तीय पूँजीवाद, साम्राज्यवादियों को संचालित करता है। और पूँजीवाद की अपनी एक गति होती है। वह होती है अपने ही नाश की ओर! अमेरिकी नीति निर्माता चाहें तो भी मध्य-पूर्व से कम-से-कम बाइज़्ज़त तो नहीं निकल सकते। ईरान एक बार पहले भी अमेरिकी साम्राज्यवादी कूटनीति को 1977 की क्रान्ति के दौरान शिकस्त दे चुका है।

अरब विश्व का घमासान स्वभाव से सिर्फ़ अरब का नहीं है। यह पूरी दुनिया में ही अमेरिका की स्थिति को ख़राब कर रहा है। अरब में उलझे होने के कारण ही अमेरिका अपनी नाक के नीचे ही लातिनी अमेरिका में जो चल रहा है उसके ख़िलाफ़ कुछ नहीं कर पा रहा है। वेनेज़ुएला ने अपने तेल भण्डार को राष्ट्रीकृत कर दिया जिससे वह विश्व तेल बाज़ार में हलचल पैदा करने की स्थिति में पहुँच गया है। अभी मिली ख़बरों के मुताबिक इस दिक्कत से निपटने के लिए अमेरिका ने अपने यूरोपीय मित्रों पर इस बात का दबाव डाला है कि वे क्यूबा से अपने आर्थिक सम्बन्ध घटाकर नगण्य कर दें। लेकिन इस दबाव का लन्दन के अलावा किसी और यूरोपीय शक्ति पर ज़्यादा असर पड़ने की सम्भावना कम है। व्यापक तौर पर ईरान मसले पर यूरोपीय संघ फ़िलहाल अमेरिका के साथ है। अरब समस्या पर भी वह या तो चुप रहता है या भुनभुनाते और मिनमिनाते हुए अमेरिका की शिकायत करता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि अन्तरराष्ट्रीय साम्राज्यवादी ताकतों की कुत्ताघसीटी में वह अमेरिका का पिछलग्गू बन गया है। वह भी बड़ी सावधानी से अपना नफ़ा-नुकसान नापकर फ़िलहाल अमेरिका के साथ मुद्दा-आधारित एकता बनाए हुए है। कहने की ज़रूरत नहीं है कि यह स्थिति अस्थायी है। दूसरी ओर रूस-चीन धुरी एंग्लो-अमेरिकी धुरी के समक्ष लगातार बाधाएँ उपस्थित कर रही है। ऐसे में ईरानी राष्ट्रपति अहमदीनेजाद ने जो बात अपनी ज़मीन से कही, जिस ज़मीन से शायद हम इत्तेफ़ाक न रखें, वह बात एक दूसरी ज़मीन से सही ही लगती है। अहमदीनेजाद ने अमेरिका को एक पतित होती मरणासन्न शक्ति बताया था। विश्व साम्राज्यवाद के पतन के बारे में तो तब तक आधिकारिक ढँग से कुछ नहीं कहा जा सकता, जब तक कि तीसरी दुनिया की जनता क्रान्तियों के नये संस्करण रचने के लिए अपने आपको संगठित और गोलबन्द नहीं करती। लेकिन विश्व साम्राज्यवाद के चौधरी अमेरिका की चौधराहट पर ख़तरा तो मण्डराने लगा है। आर्थिक रूप से भी और राजनीतिक रूप से भी।

घोषणापत्र : प्रपत्र 1

पत्रिका का नाम	- आह्वान कैम्पस टाइम्स
प्रकाशन का स्थान	- गोरखपुर
प्रकाशन अवधि	- त्रैमासिक
प्रकाशक/स्वामी का नाम	- आदेश सिंह
राष्ट्रीयता	- भारतीय
पता	- 'संस्कृति कुटीर', कल्याणपुर, गोरखपुर
मुद्रक का नाम	- आदेश सिंह
राष्ट्रीयता	- भारतीय
पता	- 'संस्कृति कुटीर', कल्याणपुर, गोरखपुर
सम्पादक का नाम	- अभिनव
राष्ट्रीयता	- भारतीय
पता	- बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली

मैं, आदेश सिंह, एतद् द्वारा घोषणा करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार सत्य ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

हस्ताक्षर

आदेश सिंह

दिनांक : 31.03.2006

प्रकाशक/मुद्रक/स्वामी

यंत्रणागृह

● अर्न्स्ट टोलर

स्टटगार्ड के खुफ़िया पुलिस के अफ़सर ने उस मरते हुए नौजवान से पूछा–क्या तुम्हारी कोई आख़िरी इच्छा है जिसे इस आख़िरी वक़्त पूरा करना चाहो?

नौजवान सूनी आँखों से उन बन्द खिड़कियों को एकटक देखता रहा जो आसमान को नीले चौकोर टुकड़ों में काट देती थीं। आँगन में शाहबलूत का पेड़ अपने कँटीले फलों से लदा खड़ा था। उसने अपने से कहा–देखो वहाँ कैसे मीठे शाहबलूत लगे हैं, वह तुम्हारे खाने के लिए हैं; और जब वे पक चुकते हैं तो मुँह में आप आ गिरते हैं। मैं उन्हें भरपेट खा सकता था–मैंने अपने को क्यों पकड़ा जाने दिया?

'कुछ समझे मैं तुमसे क्या कह रहा हूँ?' अफ़सर ने दोहराया, 'क्या तुम्हारी कोई अंतिम इच्छा है?'

नौजवान ने अपने से कहा–हाँ एक चीज़ है जो मैं चाहता था, या दूसरी तरह कहो तो नहीं चाहता था। मैं नहीं चाहता था कि फिर से कैद हो जाऊँ, मैं नहीं चाहता था कि तुम मुझे मारो, ठोकरें बरसाओ और मेरे मुँह पर थूको। अगर मेरे पास ऐसी कोई इच्छा होती तो क्या मैं खिड़की से कूद गया होता? मैं समझता हूँ कि तुम्हारा यह ख़याल है कि मैंने यह सब महज़ मज़ाक के लिए किया है। है न?

'शायद तुम अपनी माँ को देखना चाहो, मौत के पहले?'

मौत, हाँ, यही तो कहते हैं उस काली चीज़ को। लेकिन वह अगर उसका नाम न लेता तो क्या कुछ बिगड़ जाता? मुझे अब यह बतलाने की ज़रूरत नहीं कि मुझे मरना है: और उस चीज़ का नाम लेना मेरे मुँह पर लेना बहुत बेहूदा बात है।...मगर वह मरेगा नहीं, वह तो घर जाएगा।

'हाँ मैं अपनी माँ को देखना चाहूँगा।' कितना अच्छा आदमी है कि उसे इस बात का ख़याल है; उसकी नीयत यही है शायद...

उसने भावशून्य आँखों से अफ़सर को देखा और सिर हिलाकर अपनी मौन स्वीकृति दी।

'मैंने उन्हें बुलाने के लिए आदमी दौड़ा दिया है, थोड़ी देर में आ जाएँगी वह।...अरे हाँ, एक सवाल है जिसका अब तक हमें कोई जवाब नहीं मिला : वह कौन था जिसने तुम्हें वे पत्र दिये?'

अफ़सर ने इन्तज़ार किया।

बहुत खूब, नौजवान ने सोचा। उस सवाल से उसके मुँह का स्वाद न जाने कैसा हो गया। उसे भयानक ऊब और खीझ महसूस हुई।

एक बार उन्होंने उसके मुँह में इसलिए कपड़ा ठूँस दिया था कि वह चिल्ला न सके और आज वे चाहते हैं कि वह चिल्लाए और अपने उन साथियों का नाम उगल दे जिनके पीछे वे हफ्तों से कुत्तों की तरह लगे थे। कितनी घिनौनी बात है। कितनी घिनौनी।

'मैं आपको कुछ नहीं बतला सकता।'

'अपनी माँ का ख़याल करो।'

नौजवान ने छत की ओर देखा।

वह और चार घण्टे ज़िन्दा रहा। चार घण्टे में तो बहुत से सवाल किये जा सकते हैं। अगर तीन मिनट में एक पूछा जाय तो भी हुए अस्सी। अफ़सर अफ़सरी में कुशल था, अपना काम समझता था, इसके पहले वह बहुतों से सवाल कर चुका था। मरते हुए लोगों से भी। तुम्हें जानना चाहिए काम करने का ढंग, और बस। किसी से गला फाड़कर चिल्लाओ और किसी से धीमे, कान में बात करो, कुछ को सब्ज़बाग़ दिखाओ।

अफ़सर ने कहा–'यह तुम्हारे भले के लिए है।'

लेकिन नौजवान ने फिर कोई सवाल न सुना। न धीमे, न ज़ोर से। वह शान्ति के साथ इस दुनिया से विदा ले चुका था।

दूसरे दिन अखबार में यह विज्ञप्ति छपी:

'जैसे कि खुफ़िया पुलिस के अफ़सर स्टटगार्ड के एक मज़दूर को इस अभियोग में पकड़ने वाले थे कि वह मज़दूरों को भड़काने वाले पर्चे बाँटता था, वैसे ही वह अपने मकान की तीसरी मंज़िल की खिड़की से नीचे आ रहा था। उसे आँगन में पड़ा पाया गया। उसकी रीढ़ की हड्डी चूर-चूर हो गई थी।

'कुछ दिन बाद वह जनरल अस्पताल की हवालाती कोठरी में मर गया।'

(अर्न्स्ट टोलर हिटलर काल के जर्मन लेखक थे)

आह्वान यहां से प्राप्त करें

उत्तर प्रदेश ■ जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर ■ जनचेतना, 16/6, वाद्यम्बरी हाउसिंग स्कीम, अल्लापुर, **इलाहाबाद** ■ विजय इन्फार्मेशन सेण्टर, कचहरी बस स्टेशन, **गोरखपुर** ■ जनचेतना, डी-68, निरालानगर, **लखनऊ** ■ जनचेतना स्टाल, कॉफी हाउस के पास, हजरतगंज, **लखनऊ** (शाम 5 से 8.30 तक) ■ प्रोग्रेसिव बुक सेण्टर, विश्वनाथ मन्दिर गेट, बी.एच.यू. परिसर, **वाराणसी** ■ जनचेतना ठेला, चौड़ा मोड, **नोएडा** (शाम 5 से 8) ■ शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, **मऊ**

दिल्ली ■ अभिनव सिन्हा, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली ■ सत्यम, सी-74, दिव्यज्योति अपार्टमेंट, सेक्टर-19, रोहिणी ■ गीता बुक सेंटर, जे.एन.यू. ■ बुक कार्नर, श्रीराम सेंटर, **मंडी हाउस**

बिहार ■ पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, **पटना** ■ रामनारायण राय, द्वारा राघव पटेल कपड़े की दुकान, साहेबगंज, पोस्ट करनौल, जिला-**मुजफ्फरपुर**

बंगाल ■ बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, **कलकत्ता** ■ जनार्दन थापा, लुकसान बाजार, पो. करेन, जि. **जलपाईगुड़ी** ■ राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मन्दिर, प्रधाननगर, **सिलीगुड़ी**

मध्य प्रदेश ■ चिंचोलकर बुक हाउस, बस स्टैण्ड, जगदलपुर, **बस्तर**

महाराष्ट्र ■ पीपुल्स बुक हाउस, 15, कावसजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट, **मुम्बई**

पंजाब ■ सुखविन्दर, 154, ओम बेकरी के सामने, शहीद करनैल सिंह नगर, फेज़-3, पखोवाल रोड, **लुधियाना**

स्मृति संकल्प यात्रा और ज्यादा उत्साह के साथ देश के विभिन्न हिस्सों में जारी...

पिछले वर्ष 23 मार्च को भगत सिंह और उनके साथियों के 75 शहादत वर्ष के आरम्भ पर शुरू की गई स्मृति संकल्प यात्रा के तहत देश के विभिन्न क्रान्तिकारी संगठन पिछले डेढ़ वर्षों से भगत सिंह के उस सन्देश पर अमल कर रहे हैं जो उन्होंने जेल की कालकोठरी से नौजवानों को दिया था; कि छात्रों और नौजवानों को ज़रूरत है कि वे क्रान्ति की अलख लेकर गाँव-गाँव, कारखाना-कारखाना, शहर-शहर, गन्दी झोपड़ियों तक जाना होगा। इस अभियान के दौरान इन जनसंगठनों ने जो भी जनकार्रवाइयाँ की हम उसका एक संक्षिप्त ब्यौरा यहाँ दे रहे हैं। जिन इलाकों में अभियान की टोलियों ने मुहिम चलाई उनमें उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, लखनऊ, गोरखपुर, वाराणसी, कानपुर, नोएडा, ग़ाज़ियाबाद, हापुड़; उत्तरांचल में रुद्रपुर, ऊधमसिंहनगर, हल्द्वानी; पंजाब में जालंधर, लुधियाना आदि जैसे शहर और साथ ही पूरा राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र भी शामिल है। इनमें से कुछ स्थानों की अभियान सम्बन्धी रिपोर्टें हम यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं।

-सम्पादक

उत्तरी, उत्तरी-पूर्वी और उत्तर-पश्चिमी दिल्ली भगतसिंह के क्रान्तिकारी नारों से गूँजा

दिल्ली। शहीदे-आज़म भगतसिंह के 75वें शहादत वर्ष (23 मार्च, 2005) से शुरू हुई "स्मृति संकल्प यात्रा" के तहत **दिशा छात्र संगठन** और **नौजवान भारत सभा** ने जगह-जगह पर सांस्कृतिक कार्यक्रम, साईकिल रैली, नुक्कड़ सभाएँ कीं व ट्रेनों, बसों, ऑफिसों और घर-घर जाकर घनीभूत जनसम्पर्क अभियान चलाया। शहीदों के अधूरे सपनों और विचारों की स्मृति को जगाने का संकल्प लेकर निकली छात्र-नौजवान की इस टोली को लोगों का व्यापक समर्थन और सहयोग मिल रहा है।

रोहिणी, दिल्ली में दिशा व नौभास द्वारा मशाल जुलूस

इस यात्रा के तहत टोली ने शहीदों के शहादत वर्ष व ऐतिहासिक दिवसों पर कई कार्यक्रम आयोजित किए। शहीद भगतसिंह, राजगुरू और सुखदेव के 76वें शहादत वर्ष(23 मार्च, 2006) पर **दिशा** और **नौभास** की संयुक्त टोली ने दो दिन का विशेष अभियान लिया। अभियान के तहत टोली उत्तर-पूर्वी दिल्ली से साईकिल रैली और नुक्कड़ सभाएँ करती हुई उत्तर-पश्चिमी दिल्ली तक गई। इस अभियान की शुरुआत करावल नगर इलाके में प्रभात फेरी से हुई। यहाँ के लोग **नौभास** व **दिशा** से परिचित हैं, इसलिए जैसे ही नौजवानों का टोली गलियों में आयी, लोग घरों से बाहर निकल आये और यात्रा के सदस्यों द्वारा गाये जा रहे क्रान्तिकारी गीतों को ध्यान से सुना और नौजवानों के इस प्रयास की सराहना की। अभियान में आगे की यात्रा साईकिल से **दयालपुर, शेरपुर चौक** और **भजनपुरा, वजीराबाद** के चौराहों पर नुक्कड़ सभाएँ करते हुए शाम को **तिमारपुर** पहुँची। यहाँ एक सांस्कृतिक नुक्कड़ सभा आयोजित की गई। सभा में शहीद भगतसिंह की तस्वीर पर फूल माला चढ़ाते हुए **दिशा** और **नौभास** के सदस्यों ने शहीदों के सपनों को पूरा करने का संकल्प लिया। इस शपथ ग्रहण में वहाँ के कई निवासी भी शामिल हुए। यहाँ से आगे बढ़ते हुए टोली **दिल्ली विश्वविद्यालय** के **पटेल चैस्ट, विजयनगर, कैम्प, मॉडल टाउन, गुजराँवाला टाउन, आजादपुर, आदर्शनगर, जहाँगीर पुरी, बाईपास** होते हुए **रोहिणी** पहुँची। पूरी यात्रा में नुक्कड़ सभाओं का सिलसिला जारी रहा। 24 मार्च को रोहिणी के अलग-अलग सेक्टरों में साईकिलों पर प्रभात-फेरी निकाली गई, इस दौरान कई नागरिकों

ने टोली को रोककर इस यात्रा के बारे में जानना चाहा और आज के समय में नौजवानों द्वारा किये जा रहे इस प्रयास को सराहनीय बताया। दोपहर में साईकिलों पर निकले **दिशा** और **नौभास** की टोली **रोहिणी** के प्रमुख नुक्कड़-चौराहों पर सभाएँ करती हुई शाम को **सेक्टर-15** के पार्क में पहुँची जहाँ एक सांस्कृतिक कार्यक्रम और मशाल जुलूस का आयोजन किया गया। *आ गये यहां जवाँ कदम*, और ये *फैसले का वक्त है* जैसे क्रान्तिकारी गीतों की प्रस्तुति की गई। **दिशा** के अभिनव ने कहा की शहीदों के विचारों को जाने बिना समाज परिवर्तन की लड़ाई असम्भव है। उनके विचार आज की निराशा के दौर में पराजय बोध को समाप्त कर नई उम्मीदें, और नये सपने देखने की प्रेरणा देते है। **दयित्वबोध मंच** के सत्यम ने कहा कि भगत सिंह को सिर्फ एक महान क्रान्तिकारी के रूप में ही नहीं बल्कि उनके विचारों के रूप में जानना भी ज़रूरी है। **दिशा** की लता ने.अपने विचार रखते हुए कहा कि महिलाओं की मुक्ति भी उसी समाज में सम्भव है जिसका सपना भगतसिंह और उनके साथियों ने देखा था। कार्यक्रम के अन्त में यात्रा के सदस्यों ने हाथ में जलती मशाल लेकर शपथ ली की वे शहीदों के अधूरे सपनों को पूरा करने के लिये क्रान्ति के सन्देश को देशभर में ले जायेंगे। इसके बाद इस पूरे इलाके में एक मशाल जुलूस निकाला गया। कार्यक्रम देखने आए कई नौजवानों ने शहीदों के प्रति अपनी भावनाओं को इस जुलूस में हिस्सा लेकर व्यक्त किया।

रोहिणी के सार्वजनिक पार्क में शपथ ग्रहण और मशाल जुलूस के पहले क्रान्तिकारी गीतों की प्रस्तुति

दिल्ली के अलग-अलग इलाकों में घनीभूत जनसम्पर्क अभियान जारी रखते हुए **दिशा** और **नौभास** ने एक मई को **करावल नगर** के **पांचाल विहार, कमल विहार**, और **प्रकाश विहार** जैसी मज़दूर कॉलोनियों में साईकिल रैली निकाली और नुक्कड़ सभाएँ की और इसके माध्यम से **मई दिवस** की विरासत और वर्तमान समय की चुनौतियों पर चर्चा करते हुए मेहनतकश आवाम से फ़ौलादी एकता कायम करने का आह्वान किया।

इसी महीने की **10 मई** को **1857 के विद्रोह** की 150वीं वर्षगाँठ पर **दिशा** और **नौभास** की संयुक्त टोली ने **मुस्तफाबाद, गोविंद विहार, रोशन विहार, रामा गार्डन** और **शिव विहार** इलाके में कई नुक्कड़ सभाएँ की। इन सभाओं में जुटे लोगों की भारी भीड़ यह साबित करती है कि लोग अपने शहीदों और उनके संघर्षों को भूले नहीं है। इस दौरान कई नौजवानों ने भी इस यात्रा से जुड़ने की इच्छा व्यक्त की।

इस यात्रा के तहत **दिशा** और **नौजवान भारत सभा** ने दिल्ली में **शिक्षा निदेशालय, खाद्य विभाग** और **रेल दावा प्राधिकरण** के कार्यालयों में जाकर कर्मचारियों के बीच स्मृति संकल्प यात्रा का पर्चा वितरित किया गया । इन लोगों ने यात्रा को अच्छा प्रयास बताते हुए अभियान के लिए सहयोग भी किया। **नौजवान भारत सभा** और कई नये तरीकों से इस अभियान को और घनीभूत रूप से चलाने का प्रयास कर रहा है। **नौभास** के सदस्य प्रतिदिन एकदम सुबह-सुबह साईकिल पर क्रान्तिकारी गीत गाते हुए तमाम मोहल्लों में जाते है, वहाँ नुक्कड़ सभाएँ करते है। भगतसिंह के विचारों व सपनों को घर-घर तक पहुँचाने में लगी इस टोली के इस अनूठे प्रयास और प्रतिबद्धता पर, लोग आश्चर्यमिश्रित हर्ष के साथ स्वागत और भरपूर सहयोग कर रहे है।

ग़ाज़ियाबाद में नौभास द्वारा कार्यक्रम

ग़ाज़ियाबाद। नए जनमुक्ति संघर्ष की तैयारी के संकल्प और संदेश के साथ क्रांतिकारी छात्रों, युवाओं, बुद्धिजीवियों द्वारा शुरू की गई स्मृति संकल्प यात्रा के तहत नौजवान भारत सभा ने शहीद भगवतीचरण बोहरा के 77 वें शहादत वर्ष पर **प्रेस क्लब, गाजियाबाद** में विचार गोष्ठी का आयोजन किया।

नौजवान भारत सभा के तपीश ने बताया कि स्मृति संकल्प यात्रा की कड़ी में शहीद भगवतीचरण बोहरा जिनका 77वां शहादत वर्ष 28 मई 2006 से शुरू होने वाला है, **नौजवान भारत सभा** के कार्यकर्ता विभिन्न मोहल्लों, ऑफिसों में अभियान चलाकर व्यापक जनसम्पर्क करेंगे व पुस्तक एवं पोस्टर प्रदर्शनियों के जरिये उनके विचारों को व्यापक आबादी तक पहँचाने का प्रयास करेंगे। इस शहीद सप्ताह का अन्त 28 मई को प्रभात फेरियों के आयोजन पर होगा।

गोष्ठी का आरम्भ **नौजवान भारत सभा** की गायन टोली द्वारा *'शहीदों के लिए'* गीत से की गई। इस मौके पर शहीद भगवतीचरण बोहरा, भगतसिंह, राहुल सांकृत्यायन, ब्रेष्ट, मुक्तिबोध आदि क्रान्तिकारियों के उद्धरण, कवितांश आदि की आकर्षक

पोस्टर प्रदर्शनी भी लगाई गई जिसे श्रोताओं एवं दर्शकों ने काफी सराहा और नई ऊर्जा पाई। क्रान्तिकारियों की जीवनी, भगतसिंह एवं भगवतीचरण बोहरा का मशहूर लेख **क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा, बम का दर्शन** और भगतसिंह के संपूर्ण उपलब्ध *दस्तावेज पुस्तक विशेष आकर्षण रहे।*

गोष्ठी की अध्यक्षता **श्री चरण सिंह शाण्डिल्य** ने की। उन्होंने अपने वक्तव्य में **नौजवान भारत सभा** के इस प्रयास की सराहना की और उपस्थित नौजवानों को इसके लक्ष्य एवं बिचार की उदात्तता को आत्मसात करने की अपील की।

गोष्ठी की संचालन राकेश कुमार ने किया। उन्होंने बड़ी कुशलता से अपनी ज़िम्मेदारी निभायी और सभी उत्सुक वक्ताओं को मौका दिया।

गोष्ठी में बोलते हुये सन्दीप ने बताया कि किस तरह क्रान्तिकारी आन्दोलन ने चापेकर बंधुओं से होते हुए अनुशीलन, गदर पार्टी और हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी तक की विचार यात्रा तय की। उन्होंने शहीद भगवतीचरण बोहरा और भगतसिंह को उद्धृत करते हुए कहा कि "क्रान्ति पूंजीवाद, वर्गवाद तथा कुछ लोगों को ही विशेषाधिकार दिलाने वाली प्रणाली का अन्त कर देगी। यह राष्ट्र को अपने पैरों पर खड़ा करेगी, उससे नवीन राष्ट्र और नये समाज का जन्म होगा। क्रान्ति की सबसे बड़ी बात तो यह होगी कि वह मजदूर तथा किसानों का राज्य कायम कर उन सब सामाजिक, आवांछित तत्वों को समाप्त कर देगी जो देश की राजनैतिक शक्ति को हथियाये बैठे हैं।"

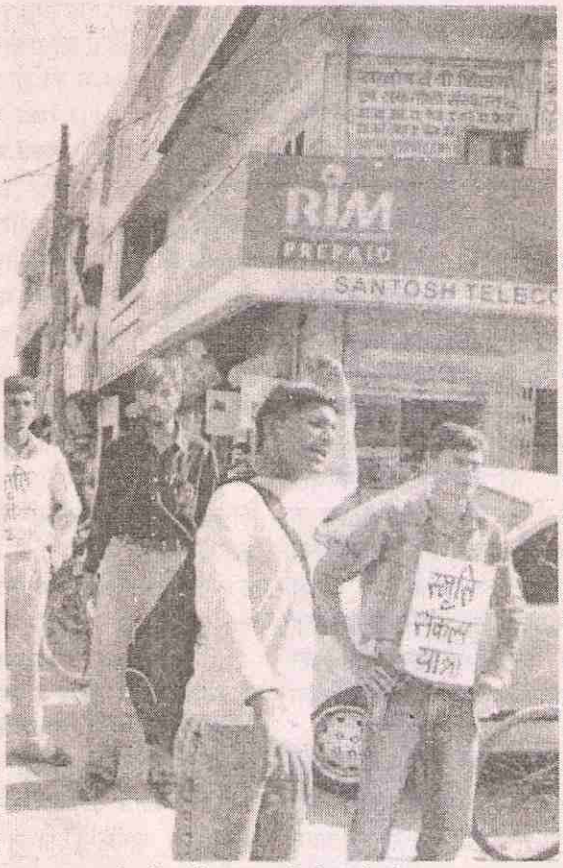

करावलनगर क्षेत्र में साईकिल जुलूस के दौरान हो रही एक नुक्कड़ सभा

श्याम और देवेन्द्र ने अपनी बात में देश के सामाजिक सांस्कृतिक आर्थिक एवं राजनैतिक गतिरोध और बर्बर होते शासन तंत्र की कलई खोल कर रख दी। उन्होंने कहा कि देश के सत्ताधारियों ने देश के भीतर जनता के *खिलाफ़ एक युद्ध छेड़ रखा है। उन्होंने नौजवानों को जनता का* पक्ष चुनने के लिए ललकारा। उन्होंने उस नौजवानी को व्यर्थ का बताया जो समाज के वैषम्य को देखकर भी अनजान बनी है। जो माताओं और बहनों के खिंचते आँचलों पर भी चुपचाप बैठी देखती रहती है।

अन्त में **नौजवान भारत सभा** के तपीश ने इस बात पर ज़ोर देते हुए कहा कि सवाल सिर्फ शासन-सत्ता के जनद्रोही चरित्र का ही नहीं है, सवाल है कि इसका विकल्प तैयार किया जाये। उन्होंने भगतसिंह और भगवतीचरण बोहरा के उस संदेश को पढ़ा जो उन्होंने नौजवानों को संबोधित किया था, **"आज देश के नौजवानों को क्रान्ति का संदेश, फैक्ट्रियों, खेतों-खलिहानों तक लेकर जाना होगा।"**

उनका कहना था कि आज नौजवानों को शहीदों की इस हिदायत पर अमल करने की जरूरत है। आज ज़रूरत है कि सत्ता द्वारा शहीदों के सपनों को भुला देने के तमाम कोशिशों के विरुद्ध छात्र नौजवान एकजुट हो जायें। नौजवानों को अपने मृत्युंजय पुरखों को याद करना ही होगा तभी भविष्य उज्जवल हो सकता है।

नौजवानों के भविष्य को राहूकेतु की तरह ग्रस लेनी वाली शक्ति असल में पूँजीवाद की कोख में जन्म ले रही है इसलिए असली सवाल एक मानव-केन्द्रित व्यवस्था के निर्माण का है। मानव की नैसर्गिक और उसकी मानवीयता को बचाने का है।

उन्होंने बताया कि किस तरह **नौजवान भारत सभा** के कार्यकर्ता झुग्गी-बस्तियों के काम कर रहे हैं। वहां मज़दूरों के बच्चों को पढ़ाने, स्वास्थ्य शिविर लगाने, फैक्ट्री मालिकों के जुल्म के ख़िलाफ़ लामबन्द करने, अपने अधिकारों के प्रति सचेत करते, पठन-पाठन की संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए लाइब्रेरी चलाने, क्रान्तिकारी साहित्य की पुस्तक प्रदर्शनियाँ, पोस्टर प्रदर्शनियाँ या फिर नुक्कड़ नाटक और क्रान्तिकारी समूहगान टोलियों के जरिये शहीदों के विचारों को कोटि-कोटि जनता तक पहुँचाने का काम कर रहे हैं।

गोष्ठी का अन्त आज के समय की जटिलताओं और परिवर्तनकामी शक्तियों की दृढ़ आस्था को स्वर देने वाले गीत से हुआ—*दुनिया के हर सवाल के हम ही जवाब है। आँखों में हमारी नई दुनिया के ख़्वाब है।*

चन्द्रशेखर आज़ाद अमर रहेंगे, हम सबके संकल्पों में

इलाहाबाद। अपने क्रान्तिकारी पुरखों की याद को बेजान सालाना कर्मकाण्ड में बदले जाते देखने से अधिक त्रासद कुछ नहीं। इस त्रासदी के रचयिता आज़ाद हिन्दुस्तान के सत्ताधारी ही नहीं हैं बल्कि कई वे ताक़तें भी हैं जो खुद को भगतसिंह,

चन्द्रशेखर आज़ाद का स्वयंभु वारिस घोषित करती हैं। इन क्रान्तिकारी पुरखों की स्मृति को इस त्रासद नियति के कैदखाने से बाहर निकालने की कोशिश के तहत चन्द्रशेखर आज़ाद की शहादत की 75वीं वर्षगाँठ (27 फरवरी) पर स्मृति संकल्प यात्रा के अन्तर्गत दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ताओं ने अल्फ्रेड पार्क, इलाहाबाद में आज़ाद के शहादत स्थल पर उनकी प्रतिमा के समक्ष हर कुर्बानी देकर उनके अधूरे सपानों को पूरा करने के लिए पूँजीवाद-साम्राज्यवाद-विरोधी जनक्रान्ति के सन्देश को जन-जन तक पहुँचाने की शपथ ली।

दोनों संगठनों के कार्यकर्ताओं ने शपथ ली कि वे क्रान्तिकारी शहीदों के नकली वारिसों द्वारा छात्र-युवा आन्दोलन को सुधारवाद-संसदवाद के दलदल में धँसा देने की कोशिशों का लगातार भण्डाफोड़ करते हुए जनक्रान्ति की मशाल को प्रज्ज्वलित करेंगे जिससे क्रान्ति की स्पिरिट ताज़ा हो और इंसानियत की रूह में हरकत पैदा हो।

आज़ाद के शहादत स्थल पर पहुँचकर शपथ लेने से पूर्व इलाहाबाद के विभिन्न कालोनियों, मुहल्लों में प्रभात फेरियाँ निकाली गईं। उसके बाद कार्यकर्ता हाथों में नारे लिखी तख्तियाँ लिये जुलूस की शक्ल में शहादत स्थल पर पहुँचे। तख्तियों पर 'चन्द्रशेखर आज़ाद अमर रहेंगे, हम सबके संकल्पों में', 'आज़ाद का सपना आज भी अधूरा, छात्र और नौजवान उसे करेंगे पूरा', और 'पूँजीवाद-साम्राज्यवाद का नाश हो', 'इंक़लाब ज़िन्दाबाद' आदि नारे लिखे हुए थे। शपथ के बाद आज़ाद की प्रतिमा के निकट पार्क में उपस्थित जनसमुदाय के बीच 'हवाई गोले' उर्फ 'देख फकीरे लोकतंत्र का फूहड़ नंगा नाच' नामक नुक्कड़ नाटक का मंचन किया गया जिसे दर्शकों ने खूब सराहा। यह व्यंग्य नाटक संसदीय जनतंत्र की पतनशीलता को उजागर करते हुए क्रान्तिकारी विकल्प का निर्माण करने का आह्वान करता है। दोपहर में महालेखा परीक्षक कार्यालय के कर्मचारियों के समक्ष नाटक की एक और प्रस्तुति की गई।

शाम के समय कर्नलगंज तिराहे पर छात्रों की भारी भीड़ को सम्बोधित करते हुए एक आम सभा भी हुई जिसके बाद मशाल जुलूस निकाला गया। आम सभा में स्मृति संकल्प यात्रा के कार्यकर्ताओं ने छात्रों-नौजवानों से पूँजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी नयी जनक्रान्ति के लिए आगे आने का आह्वान किया। वक्ताओं ने सुधारवादी और संसदमार्गी दलों-संगठनों के चुंगल से बाहर निकलकर नये क्रान्तिकारी छात्र-युवा संगठनों के निर्माण के लिए ललकारा।

गोरखपुर में भी सघन जन सम्पर्क अभियान और गोष्ठियों का आयोजन

गोरखपुर। चन्द्रशेखर आज़ाद के 75वें शहादत दिवस पर स्मृति संकल्प यात्रा के अन्तर्गत दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा ने संयुक्त रूप से एक पखवारे तक विभिन्न आयोजन किये। गोरखपुर विश्वविद्यालय के कला संकाय व विधि संकाय और सेण्ट एण्ड्रूज़ महाविद्यालय में नुक्कड़ नाटकों के मंचन के अलावा विश्वविद्यालय परिसर में केन्द्रीय ग्रन्थालय के निकट तीन दिवसीय पोस्टर एवं क्रान्तिकारी साहित्य की प्रदर्शनी का आयोजन किया गया।

21 फरवरी को विश्वविद्यालय के मुख्य प्रवेश द्वार के सामने स्थित पन्त पार्क में एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसका विषय था 'क्रान्तिकारियों की विरासत और नौजवानों का रास्ता'। दोनों संगठनों के कार्यकर्ताओं का एक जत्था 27 फरवरी को इलाहाबाद में होने वाले कार्यक्रम में शिरकत करने के लिए भी ट्रेन के जरिये पहुँचा। ट्रेन के मुसाफिरों के बीच भी कार्यकर्ताओं ने व्यापक प्रचार व पर्चा वितरण किया।

इसके बाद गोरखपुर की नौभास व दिशा की इकाई ने 23 मार्च से दो दिनों का एक सघन कार्यक्रम लिया। भगत सिंह, राजगुरू और सुखदेव की शहादत के 76वें वर्ष की शुरुआत पर 23 मार्च को गोरखपुर रेलवे स्टेशन से एक जुलूस निकाला गया जो शहर के विभिन्न हिस्सों से होता हुआ बेतियाहाता चौराहे पर पहुँचा। वहाँ भगत सिंह की प्रतिमा पर माल्यार्पण किया गया और एक शपथ ग्रहण समारोह हुआ जिसमें छात्रों और नौजवानों की टोलियों ने भगत सिंह और उनके साथियों के सपनों को पूरा करने की शपथ ली। इसके बाद शाम को गोरखपुर के बिछिया जंगल तुलसी राम नामक इलाके में एक श्रृद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया। वहाँ *'देख फकीरे लोकतंत्र का फूहड़ नंगा नाच'* नामक नाटक का मंचन हुआ जिसमें संसदीय लोकतंत्र की पोल खोली गई थी। इस नाटक को दर्शकों ने काफी सराहा। वक्ताओं ने अपनी बात रखते हुए लोगों को यह याद दिलाया कि हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन के क्रान्तिकारियों का उद्देश्य सिर्फ अंग्रेजों से आज़ादी नहीं था बल्कि हर प्रकार के शोषण से आज़ादी था। इसके बाद मुहल्ले में एक मशाल जुलूस निकाला गया जिसमें 100 से भी ज्यादा लोग शामिल थे।

24 मार्च को मर्यादपुर में देहाती मज़दूर यूनियन और नौजवान भारत सभा ने संयुक्त रूप से एक श्रृद्धांजलि सभा आयोजित की। इसमें देमयू के साथियों ने क्रान्तिकारी लोकगीत और बिरहा की प्रस्तुति की और नौभास के साथियों ने *'देख फकीरे लोकतंत्र का फूहड़ नंगा नाच'* का मंचन किया। इन सांस्कृतिक कार्यक्रमों को जनता ने खूब सराहा। वक्ताओं ने व्यापक मेहनतकश और युवा एकता की ज़रूरत पर विशेष बल देते हुए कहा कि ये तबके अलग-अलग रहकर अपना भविष्य नहीं बचा सकते।

रोहिणी, दिल्ली में नौजवान भारत सभा व जागरूक नागरिक मंच द्वारा विचार गोष्ठी

21 अप्रैल को रोहिणी सेक्टर 18 के एमसीडी के समुदायिक केन्द्र में नौजवान भारत सभा और जागरूक नागरिक मंच ने स्मृति संकल्प यात्रा के तहत भगवती चरण वोहरा की शहादत की बरसी के एक सप्ताह पूर्व एक कार्यक्रम शुरू किया। शुरुआत एक विचार गोष्ठी से हुई। गोष्ठी का विषय था 'क्रान्तिकारियों के सपनों का भारत और आज का समय'। गोष्ठी का संचालन किया जागरूक नागरिक मंच के सत्यम ने। नौजवान भारत सभा के कपिल ने

सबसे पहले बात रखते हुए इस ओर लोगों क्या ध्यान दिलाया कि शहीदों का सपना सिर्फ अंग्रेज़ों से मुक्ति नहीं था। इसके बाद **नौभास** के ही जयपुष्प ने आज़ादी के खोखलेपन की बात कही जिसमें ग़रीबों के लिए सिर्फ बेरोज़गार घूमने और भूखा मरने की आज़ादी है।

आह्वान कैम्पस टाइम्स की सम्पादक कविता ने अपने विचार रखते हुए कहा कि महिलाओं की मुक्ति का सवाल आम मेहनतकश जनता और निम्न मध्यम वर्ग की मुक्ति से जुड़ा हुआ है। इसके बाद दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दू कॉलेज के अध्यापक डा. रामेश्वर राय ने संस्कृति पर अपनी बात रखते हुए कहा कि हमें अपने अन्दर के पितृसत्तात्मक मूल्यों से भी लड़ना होगा। साथ ही डा. राय ने उपभोक्तावादी संस्कृति से संघर्ष की ज़रूरत पर भी बल दिया। इसके बाद **नौभास** के प्रसेन ने अपनी बात रखते हुए कहा कि सपनों और इतिहास को भुलाकर कोई भी क़ौम तरक्की नहीं कर सकती। अन्त में **दिशा छात्र संगठन** के अभिनव ने विकल्प पर अपनी बात रखी। अभिनव ने कहा कि पूरे देश में आज क्रान्तिकारी जनसंगठनों का एक तानाबाना फैला देने की ज़रूरत है और उसे समन्वित करने वाली एक क्रान्तिकारी पार्टी बनाने की ज़रूरत है जो इलेक्शन नहीं बल्कि इंक़लाब के रास्ते देश में परिवर्तन करे।

कार्यक्रम की शुरुआत में दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों की सांस्कृतिक टोली **विहान** दो गीत प्रस्तुत किये। पहला गीत था फैज़ अहमद फैज़ का *दरबारे वतन में जब एक दिन* और दूसरा गीत था *शहीदे के लिए*। श्रोताओं ने इन गीतों को काफी सराहा। कार्यक्रम का समापन इसी संकल्प के साथ हुआ कि हम शहीदों के सपनों को हकीकत में बदलकर रहेंगे।

नौजवान भारत सभा के नेतृत्व में चल रहा जुझारू सड़क निर्माण आन्दोलन नये चरण में पहुँचा

पिछले 6 महीने से करावलनगर के मुकुन्द विहार में चल रहा सड़क निर्माण आन्दोलन अब एक नये चरण में पहुँच गया है। इस आन्दोलन की आंशिक जीत के रूप में कुछ गलियों का निर्माण कार्य शुरू हुआ है और जहाँ पहले से निर्माण कार्य चल रहा था वह तेज़ हुआ है। बाकी गलियों के लिए नौजवान भारत सभा के आह्वान पर मोहल्ले के बाशिंदे **नौभास** के दफ्तर के सामने इकट्ठा हुए। 9 अप्रैल को हुई इस बैठक में यह फैसला लिया गया कि सांसद सन्दीप दीक्षित ने जो वायदा किया था वह कोरा वायदा साबित हुआ है। विधायक बिष्ट और पार्षद जगदीश प्रधान द्वारा दिये गए आश्वासन भी झूठे साबित हो चुके हैं। **नौभास** के आशू ने प्रस्ताव रखा कि अब एक प्रतिनिधि मण्डल को सांसद सन्दीप दीक्षित से मिलकर उन्हें यह अल्टीमेटम देना चाहिए कि अगर एक महीने के अन्दर बाकी सड़कों का निर्माण कार्य नहीं शुरू होता तो मुकुन्द विहार के निवासी **नौभास** के नेतृत्व में धरने पर बैठेंगे।

इस प्रस्ताव को निवासियों की ओर से पूरा समर्थन प्राप्त हुआ। नतीजतन, 12 अप्रैल को **नौभास** का प्रतिनिधि मण्डल सन्दीप दीक्षित से मिलने पण्डारा मार्ग पर स्थित उनके घर गया। इस प्रतिनिधि मण्डल की ओर से योगेश और अभिनव ने सांसद से बात की। इनके सवालों का सन्दीप दीक्षित के पास कोई जवाब नहीं था। **नौभास** की चेतावनी के मद्देनज़र और चूँकि वहाँ भारी संख्या में लोग मौजूद थे, इसलिए सांसद दीक्षित को यह वायदा करना पड़ा कि **नौभास** के प्रतिनिधियों को हरिजन वेलफेयर बोर्ड के कार्यालय और यमुना पर विकास प्राधिकरण के कार्यालय में सभी फाइलों और कागज़ात को देखने की अनुमति दी जाएगी। और साथ ही उन्हें जन दबाव के कारण तत्काल कनिष्ठ अभियन्ता को फोन करके यह कहना पड़ा कि वह फौरन मुकुन्द विहार की सड़कों के निर्माण कार्य की प्रगति से उन्हें अवगत कराएँ और कार्य में आने वाली किसी भी बाधा को तत्काल दूर करें। **नौभास** के आशीष ने बताया कि अगर इन आश्वासनों के बाद भी समस्याओं का त्वरित समाधान नहीं होता तो जून के दूसरे सप्ताह में सांसद सन्दीप दीक्षित के घर के सामने एक दिन का धरना दिया जाएगा।

यह इस आन्दोलन को मिलने वाली एक बड़ी सफलता थी। इस आन्दोलन से यह बार-बार साबित हुआ है कि अगर आम जन एकजुट होकर संघर्ष करें तो निश्चित रूप से उन्हें ऐसे मसलों पर सफलता मिल सकती है।

अमर शहीद भगवती चरण वोहरा

(पेज 7 से जारी)

क्रान्तिकारियों पर 'बम की पूजा' का आरोप लगाए जाने के आरोप में यह पर्चा लिखा गया था। इसमें गाँधी के प्रचारात्मक आक्रमण का जवाब देने के साथ ही अहिंसा की एक सुसंगत व्याख्या करते हुए क्रान्तिकारियों के असली उद्देश्य एवं भावी समाज की रूपरेखा भी प्रस्तुत की गई थी।

यहाँ यह जानकारी देना उचित होगा कि केन्द्रीय कमेटी की सहमति न मिलने पर वायसराय पर बम हमले की पूरी योजना और क्रियान्वयन भगवती चरण वोहरा द्वारा ही संचालित किया गया। वायसराय और गाँधी की वार्ता को वोहरा ने एक साम्राज्यवादी के साथ पूँजीपतियों के प्रतिनिधि की बातचीत की संज्ञा दी।

28 मार्च 1930 में भगत सिंह को छुड़ाने के लिए बम परीक्षण की एक हृदय विदारक दुर्घटना में रावी के तट पर क्रान्ति का यह प्रखर विचारक और उत्कट योद्धा बलिदान हो गया। शरीर के परखच्चे उड़ गये लेकिन अन्तिम साँस तक वह साथियों को ढाढ़स बँधाते रहे। कहीं अंग्रेज़ों को भनक न लग जाये, इसलिए उन्हें मृत्युपरान्त वहीं रावी तट पर दफ्न कर दिया गया। यहाँ तक कि उनकी पत्नी दुर्गा भाभी भी उनसे नहीं मिल पाईं। क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतना बड़ा नेता धरती की गोद में हमेशा के लिए सो गया। जिस देश और जनता के लिए उस वीर ने अपने प्राण न्यौछावर किये उनको इतनी बड़ी घटना की ख़बर तक नहीं मिली। न कोई शोक सभा, न जनाज़ा न विदाई धुन!

इसी अमर शहीद की 77वीं शहादत तिथि पर उसी तरह का सन्नाटा दिल में एक कसक पैदा करता है। तब अंग्रेज़ों का डर था लेकिन आज किसका डर है? चन्द नौजवानों को छोड़कर इन शहीदों का नाम लेने वाला नज़र नहीं आता जबकि उन्हीं कुर्बानियों की बदौलत मिली आज़ादी भोगने वाले बहुतेरे हैं। तब सोचना पड़ेगा कि क्या क्रान्तिकारियों का इंकलाबी सपना पूरा हुआ? आज यह सवाल हमारी आँखों झाँक रहा है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश और लखनऊ में स्मृति संकल्प यात्रा के तहत प्रभात फेरियाँ, मशाल जुलूस, शपथ ग्रहण और साइकिल यात्राएँ

लखनऊ। भगतसिंह! एक ऐसा नाम जो लोगों के दिलों में बसता है, जो लोगों की जुबाँ पे रहता है। महज 23 साल की उम्र फाँसी पर चढ़ने की नहीं होती। यह उम्र तो होती है जब नौजवान अपने भविष्य के सपने बुनता है, जब वह दुनिया को भरपूर जी लेने की कामना करता है। फिर ऐसा क्या था उस नौजवान में कि उसने सारी दुनिया, समस्त मानवता के दर्द को अपने सीने में उतार लिया। और मानवता की मुक्ति का सपना अपने दिल में सँजोये हुए उस नौजवान ने फाँसी के फन्दे को चूम लिया। क्या यह महज एक कोरी भावुकता थी या मात्र एक बहादुराना कार्रवाई? या इसके पीछे एक सुसंगत वैज्ञानिक चिन्तन और इतिहास दृष्टि थी?

इलाहाबाद में चंद्रशेखर आज़ाद की प्रतिमा के समक्ष शपथ ग्रहण करते नौभास व दिशा के कार्यकर्ता

सोचने की बात है कि आखिर क्यों अभी तक भगतसिंह के बहादुरी वाले पहलू को ही सबसे अधिक प्रचारित किया गया? आखिर क्यों फाँसी लगने से पूर्व जेल की कोठरी में भगतसिंह ने जो चिन्तन किया, हिन्दुस्तान की मुक्ति का जो विचार प्रतिपादित किया और उन लिखित दस्तावेज़ों को जेल से बाहर भेजा, उसे तलाशने की कोई कोशिश नहीं हुई।

इन्हीं सारे प्रश्नों से जूझते हुए, भगतसिंह के विचारों का अध्ययन करते हुए, सामाजिक कार्यों में लगे हुए नौजवानों के समक्ष यह बात उभरकर सामने आयी कि भगतसिंह एक ऐसी शख़्सियत का नाम है जो एक पूरी क्रान्तिकारी विरासत को अपने साथ लिये हुए है, जो केवल ब्रिटिश साम्राज्यवादी शोषण के खिलाफ संघर्ष करते हुए कुर्बान हो जाने वाला नाम ही नहीं है बल्कि सभी प्रकार के देशी-विदेशी शोषण और लूट के ख़ात्मे का स्वप्न देखने वाले एक विचारवान नौजवान का नाम है, जिसके पास मानवता की मुक्ति का पूरा विज्ञान व कार्ययोजना है। जिसे इस देश के शासक वर्ग ने सचेत रूप में बाहर आने से रोक रखा है।

मानवता की मुक्ति के लिए भगतसिंह द्वारा देखे गये उस सपने को जन-जन तक पहुँचा देने का बीड़ा उठाया है 'दिशा छात्र संगठन' व 'नौजवान भारत सभा' के कार्यकर्ताओं ने। इस महती ज़िम्मेदारी को अंजाम देने के लिए तीन वर्ष तक की योजना ली गयी है और इसे नाम दिया है **'स्मृति संकल्प यात्रा'**। इन तीन वर्षों तक चलने वाली यात्रा का मकसद है **भगतसिंह के विचारों को हर जीवित युवा हृदय तक पहुँचाना**। इस तीन वर्ष की यात्रा की शुरुआत 23 मार्च 2005 को दिल्ली के फिरोजशाह कोटला मैदान से की गयी थी। मालूम हो कि 23 मार्च 2005 को भगतसिंह की शहादत की 75वीं बरसी थी और फिरोजशाह कोटला मैदान वह ऐतिहासिक स्थल है जहाँ भगतसिंह और उनके साथियों ने **'हिन्दुस्तान सोशिलष्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन'** का गठन किया था। यात्रा का समापन 28 सितम्बर 2008 को किया जायेगा। इसी दिन भगतसिंह का जन्मशताब्दी वर्ष पूरा होगा।

उक्त दोनों संगठनों की ओर से चलाये जा रहे **'स्मृति संकल्प यात्रा'** की टोलियाँ देश के अलग-अलग हिस्सों में भगतसिंह के विचारों का प्रचार-प्रसार कर रही हैं तथा इस यात्रा में मिले हुए युवा नौजवानों को लेकर 'नौजवान भारत सभा' की इकाइयाँ गठित कर रही हैं। यात्रा के इसी क्रम में विगत 9 से 20 जून तक **'स्मृति संकल्प यात्रा'** की एक टोली ने लखनऊ के विभिन्न मुहल्लों, कालोनियों, ऑफिसों, नुक्कड़ों आदि पर व्यापक प्रचार अभियान चलाया। उल्लेखनीय है कि **'स्मृति संकल्प यात्रा'** का यह जत्था इलाहाबाद, वाराणसी, गोरखपुर होता हुआ लखनऊ पहुँचा।

लखनऊ शहर के विभिन्न स्थानों पर आयोजित सभा में वक्ताओं ने कहा कि 23 मार्च 2005 से लेकर 28 सितम्बर 2008 के बीच के इन तीन वर्षों को, एक नई क्रान्ति का सन्देश पूरे देश के जन-जन तक पहुँचाने वाली **स्मृति संकल्प यात्राओं** के

माध्यम से एक क्रान्तिकारी नवजागरण के तीन ऐतिहासिक वर्ष बना देने के लिए हम कृत संकल्प हैं और इस मुहिम में भागीदारी के लिए हम आपको आमंत्रित करते हैं। उन्होंने कहा कि हमें भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों को जन-जन तक पहुँचाना होगा। उनकी स्मृति से प्रेरणा लेकर, उनके विचारों के आलोक में अपने देशकाल की परिस्थितियों को समझकर नई क्रान्ति की दिशा तय करनी होगी और फिर उस राह पर आगे बढ़ना होगा।

इस यात्रा के तहत अलीगंज, सेक्टर क्यू, एस.बी.आई. कालोनी, केन्द्रांचल कॉलोनी, इन्दिरानगर ए.बी.सी. ब्लॉक, भूतनाथ मार्केट, न्यू हैदराबाद कालोनी, राजाजीपुरम, हजरतगंज आदि स्थानों पर प्रभातफेरियाँ, नुक्कड़ सभाएँ, पोस्टर प्रदर्शनी, नुक्कड़ नाटक और व्यापक पैमाने पर पर्चा वितरण आदि कार्यक्रम के माध्यम से लोगों को भगतसिंह के विचारों से परिचित कराया गया। लखनऊ में कार्यक्रम की शुरुआत शिक्षण संघ की नेता व अनुराग ट्रस्ट की अध्यक्ष कमला पाण्डेय के हाथों विश्वविद्यालय परिसर में स्थित भगतसिंह, सुखदेव व राजगुरु की प्रतिमा के माल्यार्पण के साथ हुआ।

यात्रा के इस चरण का समापन हजरतगंज में जी.पी.ओ. पार्क में स्थित **काकोरी स्तम्भ** पर मशाल जलाकर शहीदों के सपने को साकार करने की शपथ के साथ हुआ। इस शपथ ग्रहण कार्यक्रम में यात्रा टोली में शामिल युवाओं के अतिरिक्त इस यात्रा के दौरान मिले हुए युवा नौजवान व पार्क में उपस्थित युवाओं ने हिस्सा लिया। इस अवसर पर आयोजित सभा में **स्मृति संकल्प यात्रा** के संयोजक अरविन्द ने कहा कि क्रान्तिकारियों का सपना साकार नहीं हो सका। एक अधूरी खण्डित आज़ादी के बाद, साम्राज्यवाद से साँठगाँठ किये हुए देशी-पूँजीवाद के ज़ालिम शासन के जुवे को ढोते-ढोते आधी सदी के अधिक समय बीत चुका है। आज़ादी और जनतंत्र के सारे छल-छद्म उजागर हो चुके हैं। मुट्ठीभर मुफ्तखोरों की ज़िन्दगी में चमकते उजाले के बरक्स आमलोगों की ज़िन्दगी का अँधेरा गहराता चला गया है। उन्होंने कहा कि सभी चुनावबाज पार्टियों के साथ ही अपने लक्ष्य से विश्वासघात कर चुकी नकली वामपंथी पार्टियों का गन्दा चेहरा भी नंगा हो चुका है। अब रास्ता सिर्फ एक है विकल्प सिर्फ एक है। हमें भगतसिंह के दिखाये रास्ते पर आगे बढ़ने का संकल्प लेना होगा। इसीलिए हम भारत के नौजवानों का आह्वान करते हैं : **"भगतसिंह की बात सुनो, नई क्रान्ति की राह चुनो।"**

लेखिका कात्यायनी ने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि भगतसिंह के विचार क्षितिज पर अनवरत जलती मशाल की तरह हमें दिशा दिखला रहे हैं। अब गाँव-गाँव और शहर-शहर में और तमाम कालेजों-विश्वविद्यालयों में नौजवानों और छात्रों को नये सिरे से अपने क्रान्तिकारी संगठन बनाने होंगे और उन्हें चुनावबाज़ मदारियों के पिछलग्गू बनने से बचना होगा। उन्होंने कहा कि इसके बाद, जैसा कि जेल की कालकोठरी से युवाओं को भेजे गये अपने सन्देश में भगतसिंह ने कहा था, छात्रों-नौजवानों को कारखानों के मज़दूरों और गाँव की झोपड़ियों तक जाना होगा और तमाम मेहनतक़शों को संगठित करना होगा।

सभा का संचालन करते हुए अरुण ने कहा कि यही संदेश लेकर हम इस देश के हर जीवित युवा हृदय तक पहुँचना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि भगतसिंह और उनके साथियों का सपना एक जलता हुआ प्रश्न बनकर हमारी आँखों में झाँक रहा है। उनकी विरासत हमें ललकार रही है और भविष्य हमें आवाज़ दे रहा है। एक ज़िन्दा क़ौम के नौजवान इसकी अनसुनी नहीं कर सकते। अरुण ने कहा कि हम एक नई क्रान्ति की तैयारी के लिए, एक नये क्रान्तिकारी नवजागरण का सन्देश पूरे देश में फैला देने के लिए आपका आह्वान करते हैं।

सभा को नमिता, गीतिका, उदयभान, आदि वक्ताओं ने भी सम्बोधित किया। इसके उपरांत मशाल प्रज्जवलित कर काकोरी स्तम्भ के समक्ष नौजवानों ने शपथ ली कि वे इस मशाल को तबतक जलाये रखेंगे जब तक कि शहीदों का सपना साकार नहीं हो जाता। नौजवानों ने दसो दिशाओं को और उपस्थित जनसमुदाय को साक्षी मानकर शपथ लिया कि वे अन्तिम दम तक मानवता की मुक्ति का यह संघर्ष जारी रखेंगे और तब तक चैन की साँस नहीं लेंगे जब तक वे अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर लेते। इसके बाद एक मशाल जुलूस निकाला गया जो हजरतगंज के विभिन्न मार्गों से होता हुआ विधानसभा के सामने जाकर समाप्त हुआ।

इसके पूर्व इस यात्रा के अन्तर्गत **'भगतसिंह की विरासत और नौजवानों का रास्ता'** विषय पर एक विचारगोष्ठी भी आयोजित की गयी, जिसमें युवाओं ने खुलकर हिस्सा लिया और कुछ इस यात्रा टोली में शामिल भी हुये।

स्मृति संकल्प यात्रा का बैनर और भगतसिंह की तस्वीर लगाये हुए वैन के साथ-साथ नारे लगाता हुआ, नारों की तख्ती लगाये हुए साइकिल पर सवार युवाओं का जत्था लखनऊ की सड़कों पर गुज़रता हुआ अचानक कहीं पर रुकता था, तो बरबस ही लोगों का ध्यान अपनी ओर खींच लेता था। नौजवान लड़के-लड़कियों का यह जत्था भगतसिंह कैप, कन्धे से कमर तक की स्मृति संकल्प यात्रा की पट्टी लगाये हुए, अपने हाथ में पर्चे लिये हुए राह चलते राहगिरों को आकर्षित कर लेता था और लोगों के अन्दर उत्सुकता जगा देता था कि इस यात्रा का मकसद क्या है? लोग इन युवाओं से अपनी पहलकदमी लेकर जानना चाहते थे, यात्रा में शामिल लड़के-लड़कियाँ उन्हें इस यात्रा का मकसद बताते थे और बातचीत के लिए अनका पता अपनी डायरियों में नोट करते और नारे लगाते हुए आगे बढ़ जाते थे। उनकी इस यात्रा में उनके साथ भगतसिंह और क्रान्तिकारियों का साहित्य, क्रान्तिकारी गीतों का कैसेट, यात्रा के व्यापक उद्देश्यों से परिचित कराता पर्चा था, जिसकी प्रदर्शनी यात्रा के बीच लगायी जाती थी। इसके साथ ही एक पोस्टर प्रदर्शनी भी लगायी जा रही थी, जिसमें क्रान्तिकारियों के चित्रों के साथ उनके विचारों की कलात्मक प्रस्तुति की गयी थी। यात्रा में मुख्य रूप से अरविन्द, कात्यायनी, कमला पाण्डेय, रामबाबू, नमिता, गीतिका, लालचन्द, शालिनी, स्मृति, प्रमोद, उदयभान, अरुण यादव, विवेक, अरुण, धीरज, प्रशान्त, अवधेश के अतिरिक्त अन्य युवा शामिल थे।

पंजाब के विभिन्न शहरों और गाँवों में स्मृति संकल्प यात्रा की प्रचार टोलियों द्वारा प्रचार अभियान

लुधियाना। स्मृति संकल्प यात्रा के तहत पंजाब में नौजवान भारत सभा की टोलियों ने अलग-अलग इलाकों में प्रचार अभियान चलाये। जालंधर के पास आदमपुर इलाके में नौभास की स्थानीय इकाई ने आदमपुर शहर तथा आस-पास के गाँवों में घर-घर जाकर भगत सिंह और उनके साथियों का क्रान्ति का संदेश पहुँचाया। बड़े पैमाने पर पर्चा वितरण किया गया तथा भगत सिंह और उनके साथियों से सम्बन्धित साहित्य घर-घर पहुँचाया गया।

लुधियाना तथा पखोवाल में नौभास की टोलियों ने लुधियाना शहर तथा आस-पास के गाँवों में घर-घर प्रचार अभियान चलाया गया। लुधियाना बस स्टैण्ड पर बसों में तथा लुधियाना से दिल्ली की ओर जाने वाली ट्रेनों में प्रचार अभियान चलाया गया। इसके अलावा आई.टी.आई. लुधियाना तथा आई.टी.आई. समराला में क्लास मीटिंगें तथा ग्रुप मीटिंगें की गईं। पंजाब कृषि विश्वविद्यालय तथा गुरू नानक इंजीनियरिंग कॉलेज, लुधियाना, पॉलीटेक्निक, लुधियाना के हॉस्टलों में भी प्रचार अभियान चलाया गया। इन अभियानों के दौरान बड़ी मात्रा में हिन्दी तथा पंजाबी में पर्चा बाँटा गया तथा भगत सिंह और उनके साथियों के विचारों तथा जीवन से सम्बन्धित साहित्य का वितरण किया गया।

जहाँ-जहाँ भी यह प्रचार टोलियाँ गईं वहाँ-वहाँ इन्हें जनता, और ख़ासकर नौजवानों का भारी समर्थन प्राप्त हुआ। कई जगहों पर नौजवानों ने इस मुहिम से जुड़ने और नौभास का सदस्य बनने की इच्छा जाहिर की। प्रचार अभियान के दौरान लोगों को स्मृति संकल्प यात्रा के उद्देश्य के बारे में बताया गया और नौजवानों से अपील की गई कि अगर उनके दिल में भगत सिंह और उनके साथियों के प्रति ज़रा भी सम्मान है, अगर वे आज के हालात से असन्तुष्ट हैं तो देर न करें, फ़ौरन इस मुहिम से जुड़ें और भगत सिंह के सपनों का समाज बनाने में अपना योगदान करें। नागरिकों ने जगह-जगह आश्चर्यमिश्रित हर्ष के साथ प्रचार टोलियों का स्वागत किया और इस प्रयास को सराहा और इसमें हर सम्भव सहायता देने का वायदा किया। यह अभियान यह रिपोर्ट लिखे जाने तक जारी था और पंजाब के नये-नये हिस्सों में चलाया जा रहा था।

लुधियाना में पंजाबी उपन्यास 'सुधार घर' पर दस्तक प्रकाशन द्वारा विचार गोष्ठी का आयोजन

14 मई को पंजाबी भवन, लुधियाना में पंजाबी के नामवर उपन्यासकार मित्रसेन मीत के भारतीय जेलों के बारे में लिखे गये नये उपन्यास 'सुधार घर' पर दस्तक प्रकाशन की ओर से एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस गोष्ठी की अध्यक्षता डा. सुरजीत गिल ने की जो पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला में शिक्षक हैं। गोष्ठी के आरम्भ में मित्रसेन मीत ने अपने जीवन तथा रचना प्रक्रिया के बारे में एक वक्तव्य रखा। उन्होंने कहा कि उनका जीवन मेहनतकश ग़रीब जनता के बीच गुज़रा है, इसलिए उन्होंने इस जनता की पीड़ा को ही अपने लेखन के जरिये आवाज़ देने की कोशिश की है। उपन्यास के बारे में मुख्य पेपर डा. जोगिन्दर राही का था। यह सज्जन इन दिनों पंजाबी साहित्य जगत में बहुत बड़े विद्वान आलोचक माने जाते हैं। 'सुधार घर' पर उनके द्वारा पढ़ा गया पेपर बहुत ही सतही और नीरस था। यह पेपर गोष्ठी में उपस्थित लोगों को उपन्यास की कहानी सुनाने से आगे नहीं बढ़ा, जोकि श्रोताओं के बड़े हिस्से ने पहले ही पढ़ रखी थी। यह पेपर पढ़े जाने के बाद बहस का आरम्भ हुआ। यह बहस उपन्यास के बारे में पढ़े गये पेपर की बजाय उपन्यास पर ज्यादा केन्द्रित रही। बहस में भाग लेने वालों के दो ग्रुप बन गये। एक ग्रुप उपन्यास के उन प्रशंसकों का था जो बिना किसी भी आलोचना के उपन्यास की तारीफ़ के पुल बाँधे जा रहे थे। इस समूह का प्रतिनिधित्व पंजाबी साहित्य के जाने-माने आलोचक डा. सुखदेव सिरसा (पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़) तथा सुरजीत गिल (माकपा) आदि कर रहे थे।

दूसरा ग्रुप दस्तक प्रकाशन के कार्यकर्ताओं का था। उपन्यास के बारे में इन विचारों का प्रतिनिधित्व साथी कश्मीर, अवतार (भटिण्डा) तथा पंजाबी पत्रिका प्रतिबद्ध के सम्पादक सुखविन्दर ने किया। उपन्यास के बारे में बहस का प्रारम्भ करते हुए अदारा दस्तक की ओर से मुख्य वक्ता साथी कश्मीर ने सबसे पहले उपन्यास के सकारात्मक पक्षों की चर्चा की। उन्होंने कहा कि आज जब पंजाबी में औरत-मर्द सम्बन्धों तथा किसानी जीवन पर केन्द्रित ज्यादातर उपन्यास लिखे जा रहे हैं तो ऐसे समय में मीत ने अपने उपन्यास 'सुधार घर' में जेलों जैसा नया और अलग विषय उठाया है। मीत ने भारतीय जेलों के भीतर जीवन तथा न्याय-व्यवस्था की असलियत को नंगा किया है और यह साबित किया है कि न्याय सिर्फ़ धन के जरिये सम्भव है। ग़रीब जनता के लिए इस व्यवस्था में कहीं कोई न्याय नहीं है। उपन्यास की आलोचना करते हुए उन्होंने कहा कि यह उपन्यास भारतीय न्याय व्यवस्था तथा जेलों में कुछ कानूनी सुधारों की माँग से आगे नहीं बढ़ता। उन्होंने कहा कि उपन्यास में मज़दूर वर्ग से सम्बन्धित एक भी प्रतिनिधि पात्र नहीं है। उपन्यास के सभी पात्र या तो लम्पट सर्वहारा वर्ग से सम्बन्धित हैं या मध्य वर्ग से हैं। आगे उन्होंने कहा कि उपन्यास में व्यापारी, भ्रष्ट अफ़सर और राजनेता आदि हैं जिनके बीच लूट के माल का बँटवारा होता है पर यह धन आता कहाँ से है, इसकी उपन्यास में झलक मात्र भी नहीं मिलती। उपन्यासकार इस तरह का प्रभाव पैदा करता है कि जैसे मण्डी से ही लाभ पैदा होता हो। वह उत्पादन की प्रक्रिया को छूता तक नहीं है। उन्होंने कहा कि लेखक जेलों को वर्ग-अन्तरविरोधों की उपज के रूप में दिखा सकने में भी असफल रहा है। और वह यह भी नहीं दिखा सका कि उत्पादन सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तनों की बदौलत किस तरह जेलों की समूची व्यवस्था में ही परिवर्तन होते हैं। उन्होंने कहा कि उपन्यास में से द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवादी पद्धति ग़ायब है। इस तरह विचारधारात्मक तौर पर यह उपन्यास प्रगतिशील नहीं बल्कि प्रतिक्रियावादी है। उपन्यास के कलात्मक पक्ष की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि इस नज़रिये से भी यह उपन्यास बेहद कमज़ोर है। उपन्यास में पात्रों के वार्तालाप नाममात्र हैं। उपन्यास की कहानी पात्रों के वार्तालाप के जरिये आगे बढ़ाने की बजाय लेखक धक्का मारकर कहानी को आगे बढ़ाने की कोशिश करता नज़र आता है। अन्त में उन्होंने श्रोताओं से ज़ोरदार सिफ़ारिश की कि वह जेलों पर तोलस्तोय द्वारा लिखे गये उपन्यास

'पुनरुत्थान' को ज़रूर पढ़ें। कश्मीर के वक्तव्य के बाद, समूची बहस ही उनके द्वारा रखी गई आलोचना पर केन्द्रित हो गई। बहस को आगे बढ़ाते हुए डा. सुखदेव ने कहा कि यह उपन्यास बेहतर ढंग से भारतीय न्याय व्यवस्था की क्रूरता को नंगा करता है। उन्होंने कहा कि इतना ही काफ़ी है कि यह उपन्यास भारतीय जेल व्यवस्था को नाजायज़ साबित कर देता है। उन्होंने कहा कि उपन्यास में लेखक नहीं बल्कि परिस्थितियों को बोलना चाहिए इसलिए हमें लेखक से यह आशा नहीं करनी चाहिए कि वह प्रस्तुत समस्याओं का हल भी बताए। दस्तक की ओर से बहस को आगे बढ़ाते हुए अवतार ने कहा कि अपने बचपन में भले ही लेखक ग़रीब जनता के निकट रहा हो, मगर आज हमारा समाज वहीं नहीं खड़ा है जहाँ 50 साल पहले था। इसलिए जो लेखक पल-पल बदलते यथार्थ को समझ पाने में असफल रहता है वह पिछड़ जाता है। उन्होंने कहा कि वस्तुगत यथार्थ के कलात्मक चित्रण के लिए यह ज़रूरी है कि लेखक के पास सामाजिक बदलाव की दिशा की समझदारी हो। इसलिए उन्होंने उदाहरण दिया कि किस तरह दो अलग-अलग दृष्टिकोणों वाले लेखक टूटती हुई छोटी किसानी की एक ही परिघटना को अलग-अलग तथा एक दूसरे के ठीक उलट पेश करते हैं। एक लेखक किसानी के टूटने पर आँसू बहाता है तो दूसरा इसे एक अपरिहार्य ऐतिहासिक परिघटना के रूप में देखता है। उपन्यास में संघर्ष समिति जो लेखक के पेश करने के मुताबिक 'शोषित-उत्पीड़ित' जनता की ख़ातिर लड़ती है, के बारे में अवतार ने कहा कि संघर्ष समिति चरित्र से प्रगतिशील नहीं कही जा सकती। क्योंकि वह भी सम्पत्ति के मालिक वर्ग की ख़ातिर ही लड़ती है। अवतार के वक्तव्य के बाद डा. सुरजीत ने बहस ने दखल देते हुए कहा कि बहस उपन्यास पर ही केन्द्रित रहनी चाहिए क्योंकि हम यहाँ भारतीय क्रान्ति की लाइन पर बहस करने नहीं आये हैं। ऐसी चर्चा किसी अन्य मंच पर हो सकती है।

इसके बाद **प्रतिबद्ध** के सम्पादक सुखविन्दर ने अपने विचार रखे। डा. सुरजीत के उपरोक्त बयान पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा कि डा. सुरजीत का यह कहना एकदम सही है कि बहस उपन्यास पर ही केन्द्रित रहनी चाहिए, क्रान्ति की लाइन पर बहस करने का यह मंच नहीं है। सुखविन्दर ने कहा कि हम यहाँ पर ऐसी चर्चा कर भी नहीं रहे, हमारा तो सिर्फ़ इतना ही कहना है कि वस्तुगत यथार्थ की विज्ञानसंगत समझदारी के कोई भी लेखक वस्तुगत यथार्थ का ग़लत, सतही तथा दोयम दर्जे का ही चित्रण कर सकता है। डा. सुखदेव की टिप्पणियों के बारे में सुखविन्दर ने कहा कि उनका कहना सही है कि रचना में लेखक को नहीं बल्कि परिस्थितियों को बोलना चाहिए। और किसी लेखक से यह माँग नहीं करनी चाहिए कि वह वस्तुगत समस्याओं को हल भी पेश करे। सुखविन्दर ने कहा कि कोई भी मार्क्सवादी लेखक से यह माँग नहीं करता कि वह अपनी हर रचना का अन्त इंकलाब ज़िन्दाबाद के नारे से करे। और न ही इस बहस में किसी ने इस तरह की माँग की है। उन्होंने कहा कि लेखक वस्तुगत परिस्थितियों का बयान ही इस तरह से करता है, वह विकासमान तथा ह्रासमान का द्वन्द्व दिखलाता है, जिससे पाठक को सहज ही अनुभूति होती है कि भविष्य किसका है। सुखविन्दर ने कहा कि डा. सुखदेव के बयान के ठीक उलट 'सुधार घर' में परिस्थितियाँ नहीं बल्कि लेखक बोलता है।

उपन्यास के बारे में बोलते हुए सुखविन्दर ने कहा कि पूरे उपन्यास में वर्ग संघर्ष गैर-हाज़िर है। बस आखिर में लेखक ने उपन्यास में 'वर्ग संघर्ष' नाम का शब्द यूँ डाल दिया है जैसे कि कोई दाल और सब्ज़ी में नमक डालना भूल गया हो। लेखक के मुताबिक उपन्यास में 'वर्ग संघर्ष' में 'मेहनतकशों' का पक्ष लेने वाली संघर्ष समिति के वर्गीय आधारों की भी लेखक ने कहीं चर्चा नहीं की है। पूरे उपन्यास में से इस तरह का प्रभाव उभरता है कि जैसे इस देश का कानून तो ठीक है, बस वह ठीक तरह से लागू नहीं हो पाता।

विषय से हटकर उन्होंने यह सवाल उठाया कि क्या वजह है कि मक्सिम गोर्की, हावर्ड फास्ट, जैक लण्डन, बाल्ज़ाक, तोलस्तोय आदि लेखकों की रचनाएँ तो उनके लिखे जाने के सैंकड़ों वर्ष बाद भी पूरी दुनिया में छपती हैं और पढ़ी जाती हैं। जबकि हमारे लेखकों की रचनाएँ लेखकों तथा पाठकों के एक संकीर्ण दायरे तक ही सीमित रह जाती हैं। उन्होंने कहा कि हमें इसके दो कारण समझ आते हैं। पहला कारण यह है कि हमारे लेखक खुद कुछ पढ़ते नहीं हैं, वे कूपमण्डूक हैं। कला-साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र में हमारे देश में चिन्तन बहुत कमज़ोर रहा है, जबकि इस क्षेत्र में ज़्यादातर चिन्तन पश्चिम में हुआ है, जिस पर हमारा लेखक विदेशी होने का ठप्पा लगाकर उसे किनारे कर देता है। दूसरा कारण हमें यह समझ में आता है कि हमारे लेखक कबूतरदिल, दुनियादार हैं। गोर्की, बाल्ज़ाक, तोलस्तोय आदि जैसी बहादुरी, सनकीपन उनके जीवन से ग़ायब है। उनके अपने जीवन में वे तमाम बुराइयाँ हैं जिनकी अपनी रचनाओं में वे प्रखर बुराई करते हैं। वे सुरक्षित टापुओं पर बैठकर वर्ग संघर्ष की बातें करते हैं। वे खुद इन संघर्षों के साझीदार नहीं हैं। यही वजह है कि उनकी रचनाओं में न तो ताक़त है और न ही यथार्थ की गर्मी। यही वजह है कि पंजाब के ज़्यादातर लेखकों की किताबें बाइण्डरों के गोदामों में पड़ी सड़ती रहती हैं।

हाज़िरी की दृष्टि से यह गोष्ठी सफल रही। गोष्ठी में शामिल लोगों में बड़ी गिनती युवाओं की थी। मंच संचालक की भूमिका डा. दर्शन खेड़ी ने बखूबी निभायी।

नौजवान भारत सभा द्वारा दिल्ली में दो दिवसीय युवा रचनात्मकता शिविर का आयोजन

17-18 जून, दिल्ली। उत्तर-पूर्वी दिल्ली के करावलनगर क्षेत्र में नौजवान भारत सभा की दिल्ली इकाई ने दो दिन के युवा रचनात्मकता शिविर का आयोजन किया। इस युवा रचनात्मकता शिविर में पूरे दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के अलग-अलग हिस्सों से **नौभास** के लगभग 50 नये कार्यकर्ताओं ने हिस्सा लिया। यह रचनात्मकता शिविर अब नौभास द्वारा हर साल दो बार (जून और दिसम्बर में) लगाया जाएगा और इसकी मियाद दो दिनों से बढ़ाकर तीन और पाँच दिन की जाएगी।

शिविर के संचालन की भूमिका **नौभास** के संयोजन समिति के सदस्य आशीष ने की। पहले दिन की शुरुआत सुबह 7 बजे हुई। सबसे पहले आशीष ने इस युवा रचनात्मकता शिविर के आयोजन के पीछे की सोच और उद्देश्य पर एक वक्तव्य रखा। आशीष ने कहा कि आज समाज में जो अलगाव है उसका शिकार युवा भी हैं। एक औपचारिकता की दीवार उनके बीच खड़ी है। वे अपने आपको एक इकाई के रूप में महसूस नहीं कर पाते। इस औपचारिकता की दीवार को गिराकर और एक एकता की भावना पैदा करके अलगाव को ख़त्म करना इस शिविर के उद्देश्यों में से एक है। इसके अतिरिक्त अमीर घरों के युवाओं के मनोरंजन और रचनात्मकता के लिए तो समाज में क्लब, खेलकूद सुविधाएँ और प्रशिक्षण संस्थान हैं (जहाँ

ज़्यादातर एक बीमार किस्म का मनोरंजन दिया जाता है जिसमें कोई सामाजिक सरोकार नहीं होता) लेकिन आम मध्यमवर्गीय और ग़रीब युवाओं के मनोरंजन आदि के लिए समाज उन्हें कुछ नहीं देता। ऐसे में युवाओं की रचनात्मकता को मुक्त करने के लिए उन्हें सामाजिक सरोकारों से लैस और स्वस्थ मानवीय भावनाओं को प्रोत्साहित करने वाला मनोरंजन देना ज़रूरी है, जो इस शिविर का एक अन्य लक्ष्य है। इसके अतिरिक्त **सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य** है युवाओं के बीच एक सामूहिकता की भावना पैदा करना, श्रम संस्कृति को पैदा करना, और उनके बीच से अंधविश्वास, अतार्किकता, कर्मकाण्ड आदि जैसी कुप्रवृत्तियों को दूर करना।

इन दो दिनों तक ये सारे नौजवान एक ही छत के नीचे रहे, सामुदायिक रसोई घर चलाया गया, वे साथ-साथ शिविर परिसर की सफ़ाई आदि करते थे और श्रम करते हुए एक-दूसरे से घुलते-मिलते थे।

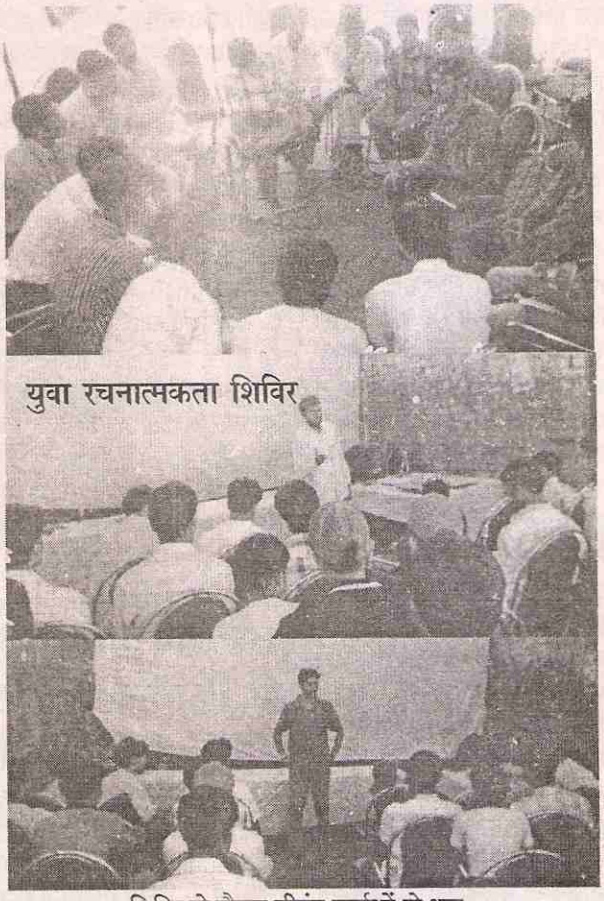

शिविर के दौरान जीवंत चर्चाओं के क्षण

पहले दिन आशीष के वक्तव्य के बाद अतिथि वक्ता के तौर पर दिल्ली विश्वविद्यालय से बुलाये गये **दिशा छात्र संगठन, दिल्ली इकाई** के शैलेश का वक्तव्य हुआ। विषय था – **'सृष्टि का उद्भव और आदमी की कहानी'**। शैलेश ने अपने वक्तव्य में बताया कि यह अंतरिक्ष कैसे जन्मा और विकसित हुआ और पृथ्वी पर मानव जीवन कैसे पैदा और विकसित हुआ। उन्होंने बताया कि इसके पीछे कोई दैवीय शक्ति नहीं है बल्कि प्रकृति के निश्चित गति के नियम हैं। इसके बाद **मुक्त रचनात्मकता सत्र** हुआ जिसमें सभी सदस्यों ने अपने-अपने हुनर का प्रदर्शन किया, जैसे मिमिक्री, नृत्य, गायन, कविता-पाठ, अभिनय, आदि।

इसके बाद **नौभास, दिल्ली इकाई** के सदस्य आशू का वक्तव्य था, जिसका विषय था – **'आज़ादी की कहानी'**। इसमें आशू ने 1857 से लेकर 1947 में आई आज़ादी तक की पूरी यात्रा को सामने रखा और बताया कि आज़ादी के आन्दोलन में वे क्या कमियाँ रहीं जिसके कारण एक रुग्ण, विकृत और विकलांग आज़ादी हमें हासिल हुई। कांग्रेस का चरित्र स्वतंत्रता आन्दोलन में क्या था? गाँधी का मूल्यांकन कैसे किया जाना चाहिए? इन सभी सवालों पर आशू ने बहुत ही स्पष्टता के साथ अपनी बात रखी।

इसके बाद **संगीत सत्र** का आयोजन हुआ जिसमें कई क्रान्तिकारी समूह गान किये गये। इससे शिविर में एक समाँ सा बँध गया और लोगों में एक अजीब-सा उत्साह भर गया।

पहले दिन के अंत में **चार्ली चैप्लिन** की प्रसिद्ध फ़िल्म **मॉडर्न टाइम्स** का प्रदर्शन हुआ जिसमें करीब 150 लोग शामिल हुए। इस फ़िल्म में मन्दी के दौर में फैली बेरोज़गारी और पूँजीवाद के उन्नत होने के साथ मज़दूर के यंत्र में तब्दील कर दिये जाने का बेहद शानदार और काव्यात्मक चित्रण किया गया था। इसके बाद इस फ़िल्म पर एक खुली चर्चा का आयोजन हुआ जिसमें लोगों ने खुल कर भाग लिया।

दूसरे दिन की शुरुआत **दिशा छात्र संगठन** के संयोजक अभिनव के वक्तव्य से हुई। अभिनव के वक्तव्य का विषय था – **समाज प्रगति कैसे करता है?** इस विषय पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि समाज के विकास की प्रक्रिया को दो तरह से समझा जा सकता है – आगमनात्मक और निगमानात्मक। आगमनात्मक तरीके से देखें तो हम पाते हैं कि मानव समाज इस प्रकृति का ही विस्तार है। और अगर प्रकृति के कुछ गति के नियम हैं तो मानव समाज की गति के भी कुछ नियम अवश्य होंगे। अगर निगमनात्मक पद्धति से सोचें तो भी हम पाते हैं कि विश्व भर में विभिन्न समाजों के विकास की मंज़िलें, जब उनका आपस में कोई सम्पर्क नहीं था तब भी, कमोबेश एक ही थीं। क्या वजह है कि हर जगह समाज आदिम अवस्था, दास समाज, सामन्ती समाज, पूँजीवाद की मंज़िलों से होकर ही गुज़रा? यानी कोई न कोई नियम ज़रूर हैं जो समाज की गति को नियंत्रित करते हैं। आगे अभिनव ने उदाहरणों और मिसालों से यह प्रदर्शित किया कि समाज के गति के नियम सुनिश्चित हैं। इसके बाद उन्होंने कहा कि अगर समाज की गति के निश्चित नियम हैं तो इतिहास का अध्ययन करके आगे की मंज़िलों को समझा जा सकता है और उन्हें और निकट लाने के लिए संघर्ष किया जा सकता है। और यही नौजवानों का सबसे महत्वपूर्ण कार्यभार होना चाहिए कि वे समाज को समझें और उसे विकास की अगली मंज़िल में ले जाने के लिए एकजुट हों, मेहनतकशों को एकजुट करें और इंकलाब के रास्ते पर चलें; यही भगत सिंह का रास्ता था।

इसके बाद **'क्या जनसंख्या बढ़ती ग़रीबी और बेरोज़गारी का कारण है?'** विषय पर सामूहिक विचार-विमर्श चक्र चलाया गया। जिसमें यह बात उभरकर सामने आयी कि जनसंख्या इन सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का कारण नहीं है। जिस देश में प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक और मानव संसाधन हों उसमें बेरोज़गारी या ग़रीबी होने की कोई वजह नहीं है। क्योंकि विकास और रोज़गार तभी पैदा होता है जब इन दो प्रकार के संसाधनों को मिला दिया जाता है।

(पेज 21 पर जारी)

नन्ही बेस्सी

(पेज 20 से जारी)

उसका ज़िम्मेदार भगवान होता है। केवल एक ही अपराधी है और वह मनुष्य नहीं है।'

अम्मा – यह वीभत्स है! यह दुष्टतापूर्ण, ईश्वर-निन्दा, अधार्मिक और भयानक है!

बेस्सी – हाँ अम्मा, लेकिन यह सच है। मैं तो बिल्ली बनाने नहीं जा रही। अगर मैं एक अच्छी बिल्ली नहीं बना सकती तो नहीं बनाऊँगी।

अध्याय - 3

अम्मा, अगर जोंस नाम का कोई आदमी स्मिथ नाम के किसी आदमी को बस मनोरंजन के लिए मार डालता है, तो वह हत्या होगी, है न, और जोंस हत्यारा होगा?

हाँ, मेरी बच्ची।

और इसके लिए जोंस सज़ा के क़ाबिल है?

हाँ, मेरी बच्ची।

क्यों, अम्मा?

क्यों? क्योंकि **दस आदेशों** में ईश्वर ने नरसंहार की मनाही की है, और इसलिए जो कोई भी किसी व्यक्ति को मारता है, वह अपराध करता है और उसे इसका फल भोगना होगा।

लेकिन अम्मा, मान लो कि जन्म से ही जोंस का ऐसा हिंसक स्वभाव है और वह उसे नियंत्रित नहीं कर सकता, तो?

उसे अपने आपको नियंत्रित *करना ही होगा*। ईश्वर को इसकी आवश्यकता है।

लेकिन उसने अपना मिजाज़ नहीं बनाया, अम्मा, वह वैसे मिजाज़ के साथ ही पैदा हुआ है, जैसे कि ख़रगोश और बाघ; और इसलिए, वह कैसे जिम्मेदार हुआ?

क्योंकि ईश्वर *कहता है* कि वह ज़िम्मेदार है, और उसे अपने स्वभाव पर नियंत्रण *करना होगा*।

लेकिन वह नहीं कर सकता, अम्मा; और इसलिए तुम्हें नहीं लगता कि हत्या ईश्वर कर रहा है और ज़िम्मेदार भी वह है, क्योंकि उसी ने तो जोंस को वह स्वभाव दिया जिस पर वह नियंत्रण नहीं कर सकता?

शांति, मेरी बच्ची! उसे नियंत्रण *करना ही होगी*, क्योंकि ईश्वर को इसकी जरूरत है और यहीं बात खत्म हो जाती है। यह बात को निपटा देता है, और इसके आगे बहस की कोई गुंजाइश नहीं है।

(*चिन्तनशील विराम के बाद*) मुझे नहीं लगता कि इससे बात निपट जाती है। अम्मा, हत्या हत्या है, है न? और जो भी इसे करता है, वह हत्यारा है? यह एक सीधी, सरल सच्चाई है, है न?

(संदेह के साथ) अब तुम क्या नतीजा निकाल रही हो, मेरी बच्ची?

अम्मा, जब ईश्वर ने जोंस को तैयार किया तो वह उसे एक खरगोश का स्वभाव भी दे सकता था, अगर वह चाहता, नहीं?

हाँ।

फिर जोंस किसी को नहीं मारता और उसे फाँसी नहीं चढ़ना पड़ता?

सच है।

लेकिन उसने जोंस को ऐसा स्वभाव देना चुना जो उसे स्मिथ को मारने पर *मजबूर कर* देगा। क्यों, फिर, वह ज़िम्मेदार नहीं है?

क्योंकि उसने जोंस को एक बाइबिल भी दी। बाइबिल जोंस को हत्या न करने की पर्याप्त चेतावनी देती है। इसलिए जोंस अगर ऐसा करता है तो इसके लिए सिर्फ वही ज़िम्मेदार है।

(*एक और विराम*) अम्मा, क्या ईश्वर ने मक्खी को बनाया?

निश्चित रूप से, मेरी प्यारी।

किसलिए?

किसी महान और अच्छे उद्देश्य के लिए, अम्मा?

हम नहीं जानते मेरी बच्ची। हम बस इतना जानते हैं कि वह *हर चीज* किस महान और अच्छे उद्देश्य के लिए बनाता है। लेकिन यह तीन साल से थोड़ी-सी बड़ी, प्यारी नन्ही बेस्सी के लिए बहुत ज्यादा बड़ा विषय है।

शायद अम्मा, लेकिन इसमें मुझे बहुत दिलचस्पी है।

मैं सबसे नयी वाली विज्ञान की किताब में मक्खियों के बारे में पढ़ रही थी। उसे "धरती पर रहने वाले जीवों में सबसे ख़तरनाक और हत्यारा जीव बताया गया है जो हर साल स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों में जानलेवा रोग फैलाकर हज़ारों की संख्या में उनकी जान लेती है।" ज़रा सोचो अम्मा, सभी जीवों में **सबसे ज्यादा ख़तरनाक**! हर तरह से वह ईश्वर द्वारा बनाये गये जीवों में वह सबसे बड़ा हत्यारा है। इस किताब में देखो क्या लिखा है :

मक्खी किसी भी प्रकार की गन्दगी की गन्ध के प्रति अतिसंवेदनशील होती है। जब भी ऐसी कोई गन्दगी सौ गज के दायरे में होती है तो वह जाती है और अपना मुँह और अपने छह पैरों के चिपचिपे बालों को उसमें लपेट लेती है। एक या दो सेकेण्ड ही रोग के इन कीटाणुओं को हज़ारों की संख्या में इकट्ठा करने के लिए काफ़ी होते हैं, और फिर मक्खी सबसे करीब वाली रसोई या भोजन-कक्ष में जाती है। वहाँ मक्खी मीट, मक्खन, ब्रेड, केक, और जो भी उसे मिलता है उस पर रेंगती है और दूध के मटके तक में घुस जाती है, और अपने हर कदम पर बड़ी संख्या में रोगाणुओं को छोड़ती जाती है। मक्खी जितनी घिनौनी होती है उतनी ही खतरनाक भी।

यह भयंकर है, अम्मा! एक मक्खी जून और जुलाई के 60 दिनों में बावन अरब बच्चे पैदा करती है, और वे बीमारों पर रेंगती हैं और मवाद, और बलगम और फोड़ों से निकलने वाली

गन्दगी में खेलती हैं, और हर प्रकार के रोगाणुओं से अपने आपको लपेट लेती हैं, फिर वे हर किसी के खाने की टेबल पर जाती है और इन रोगाणुओं को मक्खन और दूसरे खाद्य पदार्थों पर झाड़ देती हैं, और इस घिनौने क्रियाकलाप से कई तकलीफ़देह बीमारियाँ होती हैं और मौत भी हो जाती है। अम्मा सिर्फ न्यूयार्क शहर में वे हर साल सात हज़ार लोगों की जान लेती हैं—वे लोग जिनसे उनका कोई झगड़ा नहीं है। बिना कारण के जान लेना हत्या है—कोई इस बात से इंकार नहीं करता। अम्मा?

हाँ?

क्या मक्खियों के पास बाइबिल है?

जाहिरा तौर पर नहीं है।

तुमने कहा था कि यह बाइबिल है जो आदमी को ज़िम्मेदार बनाती है। अगर ईश्वर ने मक्खी को उस स्वभाव पर काबू करने के लिए बाइबिल नहीं दी, जो स्वभाव स्वयं उसने बनाया है, तो ईश्वर ही जिम्मेदार हुआ। उसी ने मक्खी को यह हत्यारा स्वभाव दिया और फिर उसे बाइबिल या किसी और बाधा से रोके बिना थोक भाव से हत्याएँ करने भेज दिया। और इस तरह ईश्वर स्वयं जिम्मेदार है। ईश्वर एक हत्यारा है। मि. होलिस्टर ऐसा कहते हैं। मि. होलिस्टर कहते हैं कि ईश्वर मनुष्य के लिए एक और अपने लिए दूसरा नैतिक नियम नहीं बना सकता। वह कहते हैं कि यह हास्यास्पद होगा।

चुप हो जाओ! काश वह जहन्नुम में होता! वह एक अधर्मी, अतार्किक, बेतुका गधा है, और मैं बार-बार तुम्हें बता चुकी हूँ उसकी जहरीली संगत से दूर रहो।

अध्याय - 4

"अम्मा, कुँवारी क्या होती है?"

"एक अविवाहिता।"

"अविवाहिता क्या होती है?"

"कोई लड़की या औरत जिसकी शादी न हुई हो।"

"जोनास चाचा कहते हैं कि कभी-कभी कोई कुँवारी जिसका बच्चा हो..."

"बकवास! किसी कुँवारी को बच्चा नहीं हो सकता।"

"क्यों नहीं हो सकता, अम्मा?"

"कुछ कारण हैं जिनसे ऐसा नहीं हो सकता।"

"कौन-से कारण अम्मा?"

"शारीरिक। बच्चा पैदा करने से पहले उसे अपना कुँवारापन तोड़ना होगा।"

"क्या मतलब, अम्मा?"

"चलो, देखते हैं। यह कुछ ऐसा है : कोई यहूदी ईसाई बनने के बाद यहूदी नहीं रह सकता; वह एक साथ ईसाई और यहूदी दोनों नहीं हो सकता। बस वैसे ही, कोई औरत एक साथ माँ और कुँवारी नहीं हो सकती।"

"क्यों अम्मा, सैली ब्रुक्स का एक बच्चा है, और वह कुँवारी है।"

"वाकई? कौन कहता है?"

"वह खुद ऐसा कहती है।"

"ओह। बेशक! क्या कोई और गवाह है?"

"हाँ—एक सपना आया था। वह कहती है कि गर्वनर का निजी सचिव सपने में आया और उसने उसे बताया कि उसे बच्चा होने जा रहा है, और बिल्कुल ऐसा ही हुआ।"

"कोई ताज्जुब नहीं! क्या उस सचिव ने यह भी कहा कि अपराध में बराबर का ज़िम्मेदार गर्वनर था?"

अध्याय - 5

बेस्सी – अम्मा, तुमने मुझे बताया था न कि कोई पूर्व-गर्वनर, जैसे कि मि. बर्लप, वह होता है जो गर्वनर रहा हो, पर अब गर्वनर न हो?

अम्मा – हाँ, प्यारी।

बेस्सी – और मि. विलियम्स कहते हैं कि "पूर्व" का मतलब हमेशा 'रहा है' होता है, है न?

अम्मा – हाँ, बच्ची। यह एक भोण्डा तरीका है, लेकिन इससे मतलब निकल जाता है।

बेस्सी (उतावलेपन के साथ) – इसका मतलब, आख़िर मि. होलिस्टर सही थे। वह कहते हैं कि कुँवारी मैरी अब कुँवारी नहीं है। वह कभी थी। वह कहते हैं–

अम्मा – यह झूठ है! ओह, वह नास्तिक पापी एक मासूम बच्ची की पवित्र आस्थाओं को अपने मूर्खतापूर्ण झूठों से नष्ट करने की कोशिश करता रहता है। अगर मेरा बस चलता, तो मैं–

बेस्सी – लेकिन अम्मा,–ईमानदारी और सच्चाई से बताओ—क्या वह अब भी कुँवारी है—एक असली कुँवारी, क्यों?

अम्मा – बिल्कुल, वह है; और वह कुँवारी के अलावा और कुछ भी नहीं रही है—ओह, वह प्रशंसनीय, शुद्ध, बेदाग, और अकलुषित!

बेस्सी – अम्मा, मि. होलिस्टर क्यों कहते हैं कि वह *नहीं हो सकती*। यही तो *वह* कहते हैं। वह कहते हैं कि वह बच्चा पैदा होने के बाद उनके पाँच बच्चे हुए जो अनुपस्थित उपाय से पैदा हुआ था जिसने कुछ नहीं तोड़ा और मि. होलिस्टर सोचते हैं कि सालों-साल के दौरान इतने बच्चे पैदा करने से किसी भी कुँवारी का कुँवारापन इतना झीना हो जाएगा कि वॉल स्ट्रीट भी इस स्टॉक को बेहद कमजोर मानेगा और आप उसे किसी भी डिस्काउण्ट पर वहाँ नहीं रख पाएँगे, क्योंकि बोर्ड कहेगा कि यह तो वाइल्डकैट है, और उसे सूचीबद्ध नहीं करेगा। *वह* ऐसा कहते हैं। और इसके अलावा–

अम्मा – फौरन नर्सरी जाओ! जाओ!

अध्याय - 6

"अम्मा, क्या ईसा भगवान है?"

"हाँ, मेरी बच्ची।"

"अम्मा, वह एक ही साथ खुद और कोई कैसे हो सकते हैं?"

"मेरी प्यारी, ऐसा नहीं है। वे सियामी जुड़वा बच्चे की

तरह हैं—दो व्यक्ति, एक-दूसरे के बाद पैदा हुए, लेकिन प्राधिकार में बराबर, शक्ति में बराबर।"

"अब मेरी समझ में आया, अम्मा, और यह एकदम सरल है। एक जुड़वा बच्चे ने अपनी माँ के साथ सम्भोग किया और खुद को और अपने भाई को पैदा किया; इसके बाद उसने अपनी दादी से सम्भोग किया और अपनी माँ को पैदा किया। मेरे ख्याल से यह मुश्किल रहा होगा, अम्मा, लेकिन दिलचस्प भी। ओह, कितना मुश्किल। मेरे विचार से सह-अपराधी..."

"भगवान के मामले में सबकुछ सम्भव है, मेरी बच्ची।"

"हाँ, शायद। लेकिन किसी और सियामी जुड़वा बच्चे के साथ नहीं, मेरे ख़्याल से। तुम्हें तो नहीं लगता न अम्मा कि कोई साधारण सियामी जुड़वा बच्चा अपनी माँ से सम्भोग कर अपने आपको और अपने भाई को पैदा कर सकता है, और फिर अपनी दादी से सम्भोग करके, *अपनी माँ* को भी पैदा कर सकता है, क्यों अम्मा?"

"निश्चित तौर पर नहीं, मेरी बच्ची। और कोई नहीं, सिर्फ ईश्वर ही इन आश्चर्यजनक और पवित्र चमत्कारों को अंजाम दे सकता है।"

"और उनका आनन्द उठा सकता है। निश्चित रूप से वह इसका आनन्द उठाता है, वरना वह इस कदर परिवार में शिकार करते न घूमता, है न, अम्मा?—जिससे गाँव में उनकी इज़्ज़त पर बट्टा लगता है और तरह-तरह की बातें होती हैं। मि. होलिस्टर कहते हैं कि उन दिनों में यह आश्चर्यजनक और महिमापूर्ण था, लेकिन अब कारगर नहीं है। वह कहते हैं कि अगर माँ मैरी आज शिकागो में होतीं, और गर्भवती हो जातीं और वह अखबार वालों को बतातीं कि ईश्वर की सह-अपराधी है, तो वह दस में से दो को भी यकीन नहीं दिला पातीं। वह कहते हैं कि ऐसे ढेर सारे लोग हैं!"

"मेरी बच्ची!"

"खैर, वह ऐसा कहते हैं।"

"ओह, *मैं चाहती हूँ* कि तुम उस दुष्ट, पापी आदमी से दूर रहो!"

"वह दुष्ट बनने का *इरादा* नहीं रखते, अम्मा, और वह ईश्वर को दोष नहीं देते। नहीं, वह ईश्वर को बिल्कुल दोष नहीं देते; वह कहते हैं कि वे सब—सारे ईश्वर—ऐसा ही करते हैं। यह उनकी आदत है, वे हमेशा से ऐसे ही रहे हैं।"

"कैसे रहे हैं, प्यारी?"

"कुँवारियों का कुँवारापन भंग करते हुए घूमते रहते हैं। वह कहते हैं कि इस विचार का आविष्कार ईश्वर ने नहीं किया—उसके पैदा होने से पहले ही यह पुराना और उबा देने वाला बन चुका था। मि. होलिस्टर कहते हैं कि उसने किसी चीज़ का आविष्कार नहीं किया, बल्कि उसे अपनी बाइबिल और अपने प्रलय और अपनी नैतिकता और अपने विचार पहले के ईश्वरों से मिले, और उन ईश्वरों को यह सब और पहले के ईश्वरों से मिला। वह कहते हैं कि अभी तक कोई ऐसा ईश्वर नहीं आया है जो किसी कुँवारी के गर्भ से पैदा न हुआ हो। मि. होलिस्टर कहते हैं कि जहाँ ईश्वर है वहाँ कोई कुँवारी सुरक्षित नहीं है। वह कहते हैं कि काश वह ईश्वर होते; वह कहते हैं कि वह कुँवारेपन को इतना दुर्लभ बना देते कि—"

"शांत, शांत! इतनी तेज़ी से *मत भागो*, मेरी बच्ची। अगर तुम—"

"—और उन्होंने मुझे सलाह दी कि मैं रात में अपने दरवाज़े बन्द कर लिया करूँ, क्योंकि"

"हश, हश, चुप हो जाओ!"

"—क्योंकि, हालाँकि, मैं अभी साढ़े तीन साल की ही हूँ और आदमियों से बिल्कुल सुरक्षित हूँ—"

"मैरी ऐन, आओ और इस बच्ची को ले जाओ! अब तुम जाओ, और तब तक मेरे पास मत आना जब तक तुम्हें धर्मशास्त्र से नीचे के स्तर के और उससे कम भयंकर किसी विषय में दिलचस्पी पैदा नहीं होती।"

बेस्सी (जाते हुए) – "मि. होलिस्टर कहते हैं कि ऐसा *कोई विषय नहीं।*"

(1908)

अनुवाद : अभिनव

राहुल फाउण्डेशन की ओर से नौजवानों के लिए कुछ बेहद ज़रूरी किताबें

● छात्र नौजवान नयी शुरुआत कहाँ से करें	आह्वान पुस्तिका-एक	(10 रुपये)
● **An Appeal to the Young**	**Peter Kropotkin**	**(Rs. 10)**
● नौजवानों से दो बातें	पीटर क्रोपोटकिन	(10 रुपये)
● ईश्वर का बहिष्कार	राधामोहन गोकुलजी	(15 रुपये)
● लौकिक मार्ग	राधामोहन गोकुलजी	(15 रुपये)
● धर्म का ढकोसला	राधामोहन गोकुलजी	(15 रुपये)
● स्त्रियों की स्वाधीनता	राधामोहन गोकुलजी	(15 रुपये)
● क्रांतिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास	शिव वर्मा	(10 रुपये)
● संस्मृतियाँ	शिव वर्मा	(50 रुपये)
● भगत सिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति	बिपन चंद्र	(10 रुपये)
● भगत सिंह और उनके साथी	अजय घोष, गोपाल ठाकुर	(30 रुपये)

आरक्षण : पक्ष, विपक्ष और तीसरा पक्ष

(पेज 7 से जारी)

का समाधान बताती है ताकि उसकी स्थिति सुरक्षित रहे और आम वंचित दलित और पिछड़े आकाशकुसुम की अभिलाषा में हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें या फिर याचनाएँ करते रहें और वोट बैंक की पूँजीवादी राजनीति के मोहरे बने रहें।

पूँजीवादी व्यवस्था के कर्णधार यही चाहते हैं लेकिन पूँजीवाद के भीतर ही इसकी एक विरोधी आन्तरिक गति भी है। एक ओर जहाँ दलितों का बहुलांश (और पिछड़ी जातियों का भी पर्याप्त बड़ा हिस्सा) पूरे देश के पैमाने पर गाँवों और शहरों की सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी में शामिल है, वहीं पूँजी की मार ऊँची जाति की आबादी के एक बड़े हिस्से और पिछड़ी जाति के किसानों के भी एक बड़े हिस्से को लगातार जगह-ज़मीन, नौकरी, सम्पत्ति आदि से वंचित करते हुए सर्वहारा की कतारों में धकेलती जा रही है। समाज का अन्तरविरोधी यथार्थ यह है कि एक ओर जहाँ जातिगत आधार पर क़ायम विषमता और विभेद को क़ायम रखने वाली और खाद-पानी देने वाली कारक शक्तियाँ सक्रिय हैं, वहीं दूसरी ओर एक विरोधी गति रसातली जीवन जीने वाले उजरती गुलामों (मुख्यतः औद्योगिक सर्वहाराओं) की लगातार बढ़ती आबादी के बीच जातिगत विभेदों को तोड़कर एकता बनाने का एक वस्तुगत आधार भी तैयार कर रही है, जो पूँजी की सर्वग्रासी मार का प्रतिरोध करते हुए, ज़्यादा से ज़्यादा उनके अस्तित्व की शर्त बनती जा रही है। ज़ाहिर है कि पूँजीवादी व्यवस्था के भाड़े के टट्टू आम मेहनतकशों के बीच जातिगत विभेदों को बढ़ाने वाले मनोगत कारकों को बढ़ावा देंगे, जबकि पूँजीवाद-विरोधी क्रान्तिकारी धारा का दायित्व यह होना चाहिए कि वह मेहनतकश जनता के बीच जातिगत आधार पर क़ायम विभेदों को दूर करने वाले और उन्हें बढ़ाने की हर साज़िश को नाक़ाम करने वाले मनोगत कारकों को बल प्रदान करे। पूँजीवाद भारत में शहरीकरण और औद्योगीकरण की प्रक्रिया को लगातार अभूतपूर्व त्वरित गति से आगे बढ़ा रहा है और साथ ही सर्वहाराकरण की प्रक्रिया तथा पूँजी और श्रम के बीच के अन्तरविरोध को भी। इस नयी सर्वहारा आबादी को जातिगत विभेद मिटाकर वर्गीय आधार पर एकजुट करना सापेक्षतः सुगम होगा और यही हमारा सर्वोपरि लक्ष्य होना चाहिए, क्योंकि तभी हम एक ऐसे फ़ैसलाकुन संघर्ष की दिशा में आगे बढ़ सकेंगे जो एक ऐसे समाज का निर्माण करेगा जो वर्ग-वैषम्य के साथ ही जाति-वैषम्य, लिंग-वैषम्य आदि समस्त विषमताओं के ख़ात्मे का फ़ैसलाकुन सिलसिला शुरू करेगा। यह अनायास नहीं है कि आरक्षण की बहस सर्वाधिक उद्वेलन मध्यवर्गीय जमातों में, और विशेषकर शहरी मध्यवर्गीय जमातों में पैदा करती है, शहरी सर्वहाराओं में नहीं। गाँवों में जो दलित और ग़रीब पिछड़ी जातियाँ हैं, वे या तो आर्थिक शोषण के साथ बर्बर सामाजिक उत्पीड़न झेलती हुई वोट बैंक की राजनीति का मोहरा बनी रहती हैं, या फिर एकजुट होकर क्रान्तिकारी ढंग से लड़ती हैं और नतीजे के तौर पर प्रायः एक हद तक स्वाभिमान-सम्मान से जीने का हक़ भी हासिल कर लेती हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि एक ओर जहाँ वर्गीय आधार पर संघर्ष को संगठित करने के लिए आम जनता के बीच जड़ जमाये जातिवादी मानसिकता और संस्कृति को समाप्त करने के लिए सतत प्रयास करना होगा, वहीं वर्गीय आधार पर संगठित जन संघर्ष की सफलता ही जातिगत विभेद के निर्णायक उच्छेद की पहली गारण्टी हो सकती है। इस ऐतिहासिक-वैज्ञानिक सूत्र को पकड़कर ही आरक्षण के प्रश्न को सही ढंग से समझा जा सकता है और सही अवस्थिति अपनायी जा सकती है।

आरक्षण की माँग यदि क्रान्तिकारी संघर्ष की दीर्घकालिक प्रक्रिया के दौरान, सुधार की एक माँग होती तो बेशक़ हम इस पर सवाल नहीं उठाते। सोलह आने की लड़ाई के फ़ैसलाकुन दौर से पहले, ऐसे भी दौर आते हैं जब दो आने की लड़ाई जीतकर हासिल को हस्तगत कर लिया जाता है और फिर आगे की तैयारी की जाती है। लेकिन दो-दो आने करके सोलह आने हासिल करने की सोच एक सुधारवादी सोच होती है, जो मौजूदा व्यवस्था को कमज़ोर करने के बजाय मज़बूत बनाती है और जनता की कतारों में दरारें पैदा करती है। आरक्षण की माँग एक ऐसी ही भयंकर भ्रमोत्पादक सुधारवादी माँग है। यह दलितवादी राजनीति की उन तमाम धाराओं के चार्टरों का साझा मुद्दा है, जो इस पूँजीवादी लूट-मार की व्यवस्था की चौहद्दी के भीतर ही जाति-प्रश्न का निदान चाहती हैं। आरक्षण से यदि आम दलित और आम पिछड़ी जातियों की बहुसंख्यक आबादी की वास्तविक स्थिति में कोई बदलाव आता, तो इस सुधार को स्वीकारते हुए एक नयी सामाजिक व्यवस्था के लिए संघर्ष की दिशा में आगे बढ़ना ही उचित कदम होता। पर वास्तविकता इसके विपरीत है। आरक्षण सुधार की माँग नहीं बल्कि एक सुधारवादी माँग है। यह आम उत्पीड़ित जातियों की जनता के हितों की दुहाई देती हुई, उनके एक अत्यन्त छोटे-से (लगभग नगण्य) हिस्से को मलाई चटाकर स्वामिभक्त और सत्ता का चाटुकार बनाती है, जबकि दूसरी ओर जातिगत आधार पर मेहनतकश आबादी को और आम मध्यवर्गीय आबादी को बाँट देती है तथा समस्या की मूल जड़ और मूल समाधान को दृष्टिओझल कर देती है। यह जाति-प्रश्न के निर्णायक समाधान की दिशा में जारी यात्रा को आगे बढ़ाने के बजाय दिग्भ्रमित करती है और रास्ते से भटका देती है। इसीलिए,

अपने जातिवादी पूर्वाग्रहों के बावजूद सभी पूँजीवादी सिद्धान्तकार, राजनीतिज्ञ और पार्टियाँ आरक्षण के प्रश्न पर एकराय हो जाती हैं। इस शिगूफ़े के उछलते ही, सवर्ण मानस वर्चस्व वाला मीडिया और शिक्षित मध्यवर्ग दलित और पिछड़ी जातियों के विरुद्ध विषवमन करना शुरू कर देता है और पूरे समाज में जातिगत विभेद और पार्थक्य की संस्कृति को मानो एक नयी शक्ति मिल जाती है। आरक्षण के समर्थन और विरोध की राजनीतियाँ एक समान उद्देश्य की पूर्ति करती हैं। वे भ्रामक और मिथ्या आशा पैदा करती हुई आम आबादी के सदियों पुराने जातिगत विभाजन को मज़बूत बनाकर उसकी वर्गीय एकता कायम करने के उपक्रमों को कमज़ोर और निष्प्रभावी बना देती हैं। इसलिए, महज़ प्रतिक्रियावश, तथ्यों की अनदेखी करते हुए, आरक्षण का समर्थन करने वालों को भी सोचना ही होगा कि इससे उन्हें वास्तव में भला क्या हासिल होने वाला है!

मान लीजिए कि आप किसी बस स्टैण्ड पर खड़े हैं और लगातार कई भरी बसें गुज़रने के बाद आप मुश्किल से किसी बस में लटक पाते हैं या घुसकर पैर टिका पाते हैं तो आप प्रायः पहले से बैठे मुसाफिरों से गुस्सा होते हैं और जो पहले से बैठे होते हैं उनका भी रवैया आपके प्रति निहायत बेरुख़ी का होता है। आपका क्रोध लचर परिवहन व्यवस्था और बसों की संख्या की कमी पर लक्षित होना चाहिए और इसमें बैठे हुए मुसाफिरों को भी साथ लेने की कोशिश होनी चाहिए, पर व्यवहार में प्रायः ऐसा नहीं होता। एक राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्था में भी प्रायः ऐसा ही होता है और शिक्षा तथा नौकरियों में आरक्षण के प्रश्न पर भी ऐसा ही हो रहा है। लड़ाई एक ऐसी व्यवस्था के लिए होनी चाहिए जिसमें सबके लिए समान और निःशुल्क शिक्षा हो और सबके लिए नौकरियों के समान अवसर हों। आर्थिक विश्लेषण बताता है कि उत्पादन यदि चन्द लोगों के मुनाफ़े के लिए न होकर सामाजिक उपयोगिता के लिए हो तो ऐसा सम्भव हो सकता है। बीसवीं शताब्दी में समाजवादी क्रान्तियों के प्रथम संस्करण विफल भले ही हो गये हों लेकिन उन्होंने इसे सम्भव कर दिखाया था। आज उत्पादक शक्तियों के अभूतपूर्व विकास के बावजूद पूँजीवाद आम आबादी पर जो कहर बरपा कर रहा है, उसे देखते हुए एक बार फिर सर्वहारा क्रान्तियों के नये संस्करण अवश्यम्भावी प्रतीत होने लगे हैं। ये नयी क्रान्तियाँ जब उत्पादन, राज-काज और समाज के ढाँचे पर उत्पादन करने वाले लोगों का नियंत्रण क़ायम करेंगी और उनके हाथों में फ़ैसले की ताकत देंगी, तभी जाकर सभी को समान और निःशुल्क शिक्षा मिल सकेगी और सभी काम करने वालों को काम मिल सकेगा। आरक्षण की माँग यदि 'सभी को समान एवं निःशुल्क शिक्षा तथा सबके लिए रोज़गार' की लड़ाई की एक कड़ी होती या इसे आगे बढ़ाने में सहायक होती, तो बेशक़ इसका समर्थन किया जा सकता था। लेकिन एक तो इससे आम दलित या पिछड़े को मिलता कुछ भी नहीं, दूसरे यह अन्तिम समाधानकर्ता संघर्ष के लिए जुड़ती युवा कतारों को ही जातिगत आधार पर बाँट देती है। इस तरह सामाजिक न्याय का भ्रामक नारा देते हुए आरक्षण का मुद्दा उस पूँजीवादी व्यवस्था की जड़ों को ही मज़बूत बनाता है, जिसके रहते हुए जाति-वैषम्य का खात्मा सम्भव ही नहीं है।

आरक्षण के पक्ष में तर्क देते हुए दलित नेता उदित राज लिखते हैं : *"साधारण स्कूलों में पढ़ने वाले जिन बच्चों के माँ-बाप पढ़े-लिखे नहीं हैं और बच्चा स्कूल के बाद घर के कामकाज में हाथ बँटाता है, अगर वह कुछ अंकों की छूट माँगता भी है तो इसमें कौन-सी बुराई है? जो मापदण्ड पिछड़ों और दलितों के लिए निर्धारित किया जा रहा है, यदि यूरोप और अमेरिका वही भारत के लिए तय करने लगें तो क्या वे अपनी खोज, आविष्कार या तकनीक का इस्तेमाल करने देंगे? कौन-सी मौलिक खोज या आविष्कार भारत में हुआ, जिसे लेकर अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर गर्व किया जा सके? बात कुल मिलाकर स्वार्थ की है कि अभिजात वर्ग के कुछ ही लोग इन संस्थाओं का फायदा उठाना चाहते हैं और इससे ग़रीब या आम सवर्ण प्रभावित नहीं होता"* (जनसत्ता, 2 जून, 2006)। उदित राज की इस तर्क प्रणाली की पड़ताल के माध्यम से आरक्षणवादी राजनीति के वर्ग-चरित्र को आसानी से समझा जा सकता है। पहली बात तो यह कि आरक्षण के नाम पर मिलने वाली छूट का एक अत्यन्त छोटा हिस्सा ही वास्तव में अशिक्षित दलित माँ-बाप के उन बच्चों तक पहुँच पाता है जो स्कूल के बाद घर के कामकाज में माँ-बाप का हाथ बँटाते हैं। दूसरी बात यह कि आरक्षण की इस छूट का लाभ पूरी तरह से ऐसे बच्चों तक पहुँच भी जाए तो इन बच्चों की संख्या के अनुपात में इस छूट की मात्रा अत्यन्त कम पड़ेगी। तीसरी बात यह कि जब उदित राज स्वयं मानते हैं कि नौकरियों व अन्य विशेषाधिकारों के लाभ से ग़रीब व आम सवर्ण वंचित होता है तो फिर क्या आरक्षण का नारा इन ग़रीबों को दलित व पिछड़ी जाति के ग़रीबों से और दूर करने काम नहीं करता? ग़रीब सवर्णों को साथ लेने के लिए उनके पास क्या कार्यक्रम है? कोई कह सकता है कि इसका उपाय है कि आर्थिक आधार पर भी आरक्षण दिया जाये। हम सभी जानते हैं कि सरकारी दफ्तरों से हर प्रभावी आदमी कम आमदनी का नकली आय प्रमाणपत्र बनवा लेगा लेकिन बहुत कम आम ग़रीब ही इसका लाभ लेने में सफल हो सकेंगे। और फिर यहाँ भी सवाल वही है कि जब नौकरियाँ हैं ही नहीं तो उस आय प्रमाणपत्र से भी भला क्या हासिल होगा? और जब आर्थिक स्थिति बहुसंख्य ग़रीबों को शिक्षा बीच में ही छोड़ देने के लिए मजबूर कर देती है तो फिर शिक्षा के क्षेत्र में हासिल आरक्षण में भला किसको कितना लाभ मिल सकेगा, खासकर तब जब कि शिक्षा के क्षेत्र में भी प्राथमिक से लेकर उच्च स्तर तक निजीकरण की प्रक्रिया लगातार जारी है और शिक्षा ज़्यादा से ज़्यादा बिकाऊ माल बनती जा रही है?

उदित राज ने जाति व्यवस्था की तुलना (या सादृश्य-निरूपण) पूँजीवादी विश्व व्यवस्था के साथ की है और यह तर्क दिया है कि जिस प्रकार अपनी खोजों, आविष्कारों और तकनीकों का इस्तेमाल करने देने की "उदारता" अमेरिका जैसे देश भारत के साथ बरतते हैं, उसी प्रकार की "उदारता" आरक्षण के मामले में सवर्ण समाज को भी दलित समाज के प्रति बरतनी चाहिए। यह तुलना अपने आप में उदित राज की वर्ग-दृष्टि का जीता-जागता प्रमाण है। पहली बात तो यह कि

साम्राज्यवादी देश अपनी खोजों व तकनीकों को ग़रीब देशों को यूँ ही नहीं देते बल्कि रायल्टी और मनमानी शर्तों पर लूट के रूप में उसकी भरपूर क़ीमत वसूलते हैं (साथ ही, यह भी ध्यान रखना होगा कि उनकी खोजों और तकनीकी प्रगति के पीछे उपनिवेशों की लूट का कितना बड़ा हाथ था!)। दूसरी बात यह कि साम्राज्यवादी देशों की इस "उदारता" के बावजूद अमेरिका जैसे देशों और भारत जैसे देशों के बीच के अन्तर और असमानतापूर्ण सम्बन्धों का अन्त मौजूदा विश्व व्यवस्था के रहते सम्भव नहीं है। यानी सवाल साम्राज्यवादी देशों से छूट हासिल करने का नहीं बल्कि पूँजीवादी विश्व व्यवस्था से निर्णायक विच्छेद करने का और फिर इस विश्व व्यवस्था का ध्वंस करने का है। ठीक उसी प्रकार, जाति व्यवस्था के सन्दर्भ में भी प्रश्न कुछ छूट हासिल करने का नहीं बल्कि जाति व्यवस्था को ही समाप्त करने का है और आरक्षण की माँग किसी भी रूप में इसमें सहायक नहीं है बल्कि इसके प्रतिकूल भूमिका निभाती है।

एक अन्य स्वनामधन्य दलित चिन्तक चन्द्रभान प्रसाद हैं जो अमेरिकी शैली की पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था के कट्टर समर्थक हैं और उसी फ्रेमवर्क में दलित प्रश्न का भी समाधान ढूँढ़ते हैं। आज ऐसे भारतीय बुद्धिजीवियों की कमी नहीं है, जो अमेरिका द्वारा बेहिसाब विश्वव्यापी लूट, अमेरिकी समाज के अन्दरूनी संकटों तथा उसमें व्याप्त गहन असमानता, उत्पीड़न और निरंकुशता की अनदेखी करते हुए, उसे समृद्ध और सुखी समाज के आदर्श के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। ऐसे बुद्धिजीवी दलित समाज में भी पैदा हो गये हैं और चन्द्रभान प्रसाद उनमें अग्रणी हैं। चन्द्रभान प्रसाद जैसों की जमात "दलित पूँजीवाद" का अनूठा विचार लेकर सामने आयी है। उसका मानना है कि निजी क्षेत्र के उद्योगों में और उच्च शिक्षा संस्थानों में (जो उनके विचार से ज़्यादातर निजी क्षेत्र में होने चाहिए) "जाति वैविध्य" को बढ़ावा देने से दलितों के बीच से भी एक पूँजीपति वर्ग तथा नौकरशाहों एवं बुद्धिजीवियों सहित मध्यवर्ग के विभिन्न संस्तर विकसित होंगे और इस प्रकार जाति प्रश्न का समाधान हो जायेगा। चन्द्रभान प्रसाद ब्राण्ड दलित चिन्तकों का मानना है कि सार्वजनिक क्षेत्र की समाप्ति और निजीकरण-उदारीकरण की लहर अनिवार्य है और इसे न्यायसंगत बनाने की गुंजाइश अधिक है। नवउदारवाद के इन पैरोकारों की सोच यह है कि यदि अमेरिका में अश्वेतों के लिए 1965 से लागू "सकारात्मक कार्रवाई" (अफर्मेटिव ऐक्शन) की ही तरह भारत में भी निजी क्षेत्र के उच्च शिक्षा संस्थानों तथा औद्योगिक-वित्तीय एवं सेवा क्षेत्र के प्रतिष्ठानों में दलितों के लिए आरक्षण को अनिवार्य कर दिया जाये तो दलितों के बीच से भी एक सम्पत्तिशाली मध्यवर्ग और उद्योगपति वर्ग पैदा हो जायेगा और उनके सामाजिक पार्थक्य, अपमान और उत्पीड़न का ख़ात्मा हो जायेगा। सच पूछें तो इससे अधिक प्रतिक्रियावादी, दलित-विरोधी सोच और कोई हो भी नहीं सकती।

रियायतख़ोरी और पैबन्दसाज़ी की मानसिकता से मुक्त होकर दलित-मुक्ति के प्रश्न और समूची जाति समस्या पर इस पूँजीवादी व्यवस्था की सीमाओं का अतिक्रमण करके सोचने पर ही इनके निर्णायक और अन्तिम समाधान की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है। दलितों के लिए राहत के चन्द टुकड़े जुटाने के बजाय, उनमें से कुछ को सफ़ेदपोश बनाकर शेष को झूठी उम्मीद के सहारे लटकाये रहने के बजाय, ज़रूरत इस बात की है कि दलित-मुक्ति की आमूलगामी परियोजना का खाका प्रस्तुत किया जाये। यह आमूलगामी परियोजना जन-मुक्ति की किसी व्यापक क्रान्तिकारी परियोजना के एक अंग के रूप में ही सम्भव हो सकती है।

सबसे पहले तो यह देखना होगा कि 1965 से अमेरिका में अश्वेत लोगों के लिए लागू "सकारात्मक कार्रवाई" से उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर क्या फ़र्क पड़ा है! निस्सन्देह, विगत चार दशकों के दौरान कारपोरेट जगत के उच्चाधिकारियों, नौकरशाहों, बुर्जुआ राजनयिकों और पत्रकारों, अकादमीशियनों आदि की जमात में काले लोगों की भागीदारी बढ़ी है और एक अच्छे-खासे आयतन वाला अश्वेत मध्यवर्ग अस्तित्व में आया है (हालांकि अभी भी कुछ छोटे-मोटे उद्यमियों-व्यापारियों को छोड़कर "अश्वेत पूँजीवाद" जैसी कोई चीज अमेरिका में भी अस्तित्व में नहीं आयी है)। लेकिन यह पूरा अश्वेत मध्यवर्ग समूची अश्वेत आबादी का एक अत्यन्त छोटा हिस्सा है। बहुसंख्यक अश्वेत आज भी निकृष्टतम कोटि के उजरती मज़दूरों का जीवन बिताते हैं और समृद्धि के द्वीप महानगरों को घेरे हुए झुग्गी-झोपड़ियों जैसी गन्दी बस्तियों के अन्धकार-वलय के निवासी बने हुए हैं। अमेरिका में रहने वाले मुलैटो, चिकानो मूल के मज़दूरों और लातिन अमेरिकी व एशियाई देशों से गये आप्रवासी मज़दूरों और अमेरिकी अश्वेत मज़दूरों को अमेरिकी समाज में न केवल बर्बर शोषण और असुरक्षा का, बल्कि सामाजिक पार्थक्य और अपमान का भी सामना करना पड़ता है। फ़र्क सिर्फ़ इतना पड़ा है कि अमेरिकी समाज में भी धनी-ग़रीब के बढ़ते ध्रुवीकरण ने इन शापित जमातों में श्वेत आबादी के एक अच्छे-खासे हिस्से को भी उजरती ग़ुलाम बनाकर ला खड़ा किया है। नस्लवाद और रंगभेद आज भी अमेरिकी समाज में मौजूद है, बस उसका रूप कुछ बदल गया है। अमेरिकी जेलों में रहने वाले बन्दियों में आज भी पचहत्तर फ़ीसदी से भी अधिक अश्वेत, और लातिन अमेरिकी या एशियाई मूल के लोग हैं। सबसे कम मज़दूरी और कठिन श्रम वाले काम भी यही आबादी करती है। अश्वेतों को यदि आज से चार दशक पहले की अपेक्षा रंगभेद और अपमान का कम सामना करना पड़ता है तो इसका कारण "सकारात्मक कार्रवाई" या कुछ थोड़े से अश्वेतों का समृद्ध हो जाना नहीं है, बल्कि यह अश्वेतों के जुझारू आन्दोलनों, अमेरिकी नागरिक अधिकार आन्दोलन और अश्वेतों की प्रबल भागीदारी वाले अमेरिकी मज़दूर आन्दोलन के परिणामस्वरूप सम्भव हुआ है। किसी भी समाज में वंचितों-उत्पीड़ितों के बीच से ऊपर उठकर एक छोटा-सा हिस्सा यदि समृद्धशाली जमातों में शामिल हो जाता है, तो इससे वंचित-उत्पीड़ित आबादी की

वास्तविक स्थिति में कोई फ़र्क नहीं आता और बस होता यह है कि उस स्थिति पर एक हद तक पर्दा पड़ जाता है। अमेरिकी पैटर्न पर "सकारात्मक कार्रवाई" की माँग करने वाले "दलित पूँजीवाद" के पैरोकार तो वास्तव में दलित आबादी के सबसे घटिया दर्ज़े के भितरघाती, अव्वल दर्ज़े के प्रतिक्रियावादी और आज के नवउदारवादी पूँजीवाद के सर्वाधिक निर्लज्ज टुकड़ख़ोर हैं जो तथ्यों को छुपाकर भारत के दलितों के सामने अमेरिकी समाज की गुलाबी तसवीर पेश करते हैं और उन्हें देशी पूँजीवाद और समूची साम्राज्यवादी विश्व व्यवस्था की सेवा में सन्नद्ध कर देना चाहते हैं। ऐसा करते हुए चन्द्रभान प्रसाद जैसे लोग इस तथ्य की भी अनदेखी करते हैं कि अमेरिकी पूँजीपति वर्ग अपने देश में दबाव बढ़ने पर, अपने नन्दन कानन को वर्ग संघर्ष की आँच से बचाने के लिए अश्वेतों और अन्य वंचित जमातों को, पूरी दुनिया से निचोड़े जाने वाले अकूत मुनाफ़े के बल पर, एक हद तक सुविधाएँ, छूट और अधिकार दे भी सकता है, लेकिन भारतीय पूँजीपति वर्ग की इतनी औक़ात नहीं है। यह अकारण नहीं है कि भारतीय पूँजीपतियों के राहुल बजाज जैसे प्रतिनिधि अमेरिकी पैटर्न की "सकारात्मक कार्रवाई" को स्वीकारने की बात तो करते हैं, लेकिन उसे पूरी तरह स्वैच्छिक बनाये रखने की बात करते हैं जबकि अमेरिका में सकारात्मक कार्रवाई को 1964 के नागरिक अधिकार कानून और कार्यकारी निर्देश सं. 11246 के द्वारा क़ानूनी तौर पर (हालाँकि एक हद तक ही) बाध्यताकारी बना दिया गया था।

यदि दलितों के बीच से कुछ पूँजीपति और उच्च अधिकारी पैदा हो जाने से दलित-प्रश्न का समाधान होना होता, तो पिछले पाँच दशकों के भीतर तमाम दलित राजनेता, कलक्टर, अन्य सरकारी अधिकारी और एक छोटे से दलित मध्यवर्ग के पैदा हो जाने से आम दलितों की स्थिति में कुछ तो फ़र्क आया होता! बेशक़, कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जो कहेंगे कि फ़र्क तो आया ही है। इतना मात्रात्मक फ़र्क तो समाज-विकास की स्वाभाविक क्रमिक गति के साथ आता ही है! इसी रफ़्तार से बदलाव की उम्मीद में यदि कोई बैठा रहे तो, तब तो उसे शताब्दियों तक प्रतीक्षा करनी होगी। इस तरह से तो कोई भी इंसाफ़पसन्द और ख़ुद्दार इंसान नहीं सोच सकता। यह नियतिवादी कायरता के साथ यथास्थिति को स्वीकारने की मानसिकता होगी। **दलितों के बीच से जो एक सुविधाभोगी मध्यवर्ग पैदा हुआ है, वह अपने सामाजिक अपमान और जातिगत पार्थक्य से छुटकारा तो चाहता है लेकिन डरता भी है कि किसी प्रकार की क्रान्तिकारी बदलाव की आँधी उसकी सुविधाओं और सामाजिक सुरक्षा को छीन लेगी। इस कायरता के चलते, वह गरमागरम बातें तो करता है लेकिन इसी व्यवस्था की चौहद्दी के भीतर रहकर जिस हद तक सम्भव हो, उस हद तक कुछ पा लेने की कोशिश करता है! साथ ही, वह बोलता तो पूरी दलित आबादी की ओर से है, पर आम दलितों से उसने अपने को पूरी तरह से काट लिया है और बर्बरतम दलित उत्पीड़न की घटना होने पर भी वह किसी आन्दोलन में सड़क पर उतरकर जुझारू भागीदारी के बजाय बस गरमागरम बयानबाज़ी ही करता रहता है।** जो लोग वंचितों-उत्पीड़ितों के बीच से ऊपर उठकर सफ़ेदपोशों की जमात में शामिल होते हैं, वे कायरता, गलाज़त और प्रतिक्रियावादी मानसिकता के मामले में परम्परागत सफ़ेदपोशों से भी बढ़-चढ़कर होते हैं। चन्द्रभान प्रसाद "दलित पूँजीवाद" के लिए बेहाल हैं, उन्हें उन बहुसंख्य दलितों की चिन्ता नहीं है जो ऐसे दलित पूँजीपतियों और अन्य पूँजीपतियों के कारख़ानों में उजरती गुलामी करते हुए अपनी ज़िन्दगी जलाते-गलाते रहेंगे।

हमारा पक्ष

आरक्षण-विरोधियों और आरक्षण समर्थकों से तर्क-वितर्क करने की प्रक्रिया में, हम समझते हैं कि हमारा पक्ष स्वतः स्पष्ट हो गया है। हमारे विचार से आरक्षण चाहे लागू हो या न लागू हो, दलितों और पिछड़ी जाति के ग़रीबों की स्थिति में कोई बुनियादी फ़र्क नहीं पड़ेगा। जाति-प्रश्न के समाधान की दिशा में यह एक छोटा-सा भी कदम नहीं है। आरक्षण का शिगूफ़ा उछालकर शासक वर्ग बहुसंख्यक शोषित-वंचित-उत्पीड़ित आबादी को जातिगत आधार पर विभाजित कर देता है और उस लड़ाई के संगठित होने की प्रक्रिया को ही बाधित कर देता है, जो हमारे समाज के तमाम बुनियादी प्रश्नों के साथ ही जाति-प्रश्न के समाधान की प्रक्रिया को भी आगे बढ़ायेगी और अंजाम तक पहुँचायेगी। आरक्षण का लक्ष्य राहत या सुधार नहीं, बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था को बनाये रखने के लिए एक लुकमा फेंककर जनता को जातिगत आधार पर बाँटना है। इसका समर्थन या विरोध करने वाले जाने-अनजाने एक ही साज़िश का शिकार हो जाते हैं।

इसीलिए, हमारा पक्ष यह है कि **हम आरक्षण का न तो समर्थन करते हैं, न ही विरोध। हम इस मुद्दे पर जनता के बँट जाने की स्थिति को ही एक कुचक्र मानते हैं और इसका विरोध करते हैं। शिक्षा और नौकरी में किसी प्रकार का आरक्षण नहीं बल्कि छात्र-युवा आन्दोलन की आज एक ही केन्द्रीय माँग हो सकती है – 'सभी के लिए समान और निःशुल्क शिक्षा तथा काम करने योग्य हर व्यक्ति के लिए रोज़गार।'** शिक्षा और रोज़गार हम सरकार की ज़िम्मेदारी मानते हैं और जिस व्यवस्था में यह सम्भव न हो सके, उसे उखाड़ फेंकना हम आम जनता के बहादुर बेटे-बेटियों का बुनियादी कर्तव्य मानते हैं। निश्चय ही, इस माँग के लिए लड़ते हुए बीच की कुछ मंज़िलें हो सकती हैं, जब तात्कालिक तौर पर सीटें बढ़ाने, फ़ीसें घटाने या बेरोज़गारी भत्ता जैसी किसी माँग के लिए लड़ा जा सकता है, लेकिन इन आंशिक, तात्कालिक या सुधारमूलक माँगों की श्रेणी में भी आज आरक्षण को शामिल नहीं किया जा सकता, खासकर तब जबकि विगत आधी सदी का अनुभव हमारे सामने है। हमें आरक्षण का समर्थन या विरोध करने और आपस में बँट जाने के बजाय आरक्षण के समर्थन और विरोध की राजनीति के वास्तविक व्यवस्थाधर्मी चरित्र का विश्लेषण और पर्दाफ़ाश करना चाहिए।

साथ ही, **क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन का यह अनिवार्य दायित्व है कि वह जातिगत भेदभाव, पार्थक्य तथा दलित उत्पीड़न के विरुद्ध लगातार प्रचार और आन्दोलन की कार्रवाई चलाये।**

जाति-विरोधी आन्दोलन को सामाजिक-सांस्कृतिक स्तरों पर लगातार चलाते हुए इसे स्त्री मुक्ति के प्रश्न से भी जोड़ा जाना चाहिए, क्योंकि जाति-आधारित पार्थक्य व उत्पीड़न, लैंगिक आधार पर कायम स्त्रियों के पार्थक्य व उत्पीड़न के साथ जुड़ा हुआ है। स्त्रियों की सामाजिक मुक्ति के साथ ही जाति के भीतर तय करके होने वाले विवाहों की रूढ़ि भी कमज़ोर पड़ेगी, युवा स्त्रियाँ विवाह के मामले में चयन की आज़ादी के लिए संघर्ष करेंगी और ऐसी स्थिति में लाज़िमी तौर पर अन्तरजातीय, अन्तरधार्मिक विवाहों का भी चलन बढ़ेगा। इस रुझान के संकेत पहले भी महानगरीय जीवन में देखने को मिलते थे, जो अब पूँजीवादी विकास के साथ ही आम प्रवृत्ति बनती जा रही है। जाति-विभेद की दीवारों को ढहाने के लिए छात्र-युवा आन्दोलन को एक सामाजिक आन्दोलन के रूप में इस प्रवृत्ति को बढ़ावा देना चाहिए।

'सबके लिए समान एवं निःशुल्क शिक्षा और सबके लिए रोज़गार के समान अवसर' का नारा जातिगत बँटवारे को समाप्त कर आम जनता के सभी बेटे-बेटियों को एक जुझारू संघर्ष के झण्डे तले एकजुट कर देगा और साथ ही, यह छात्रों-युवाओं के आन्दोलन को व्यापक मेहनतकश जनता के साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी संघर्ष की धारा के साथ भी जोड़ देगा। इस एकजुटता के बाद ही इस व्यवस्था का ध्वंस करने और ऐसी नयी व्यवस्था का निर्माण करने की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है जिसमें उत्पादन, राजकाज और समाज के ढाँचे पर उत्पादन करने वाले वर्ग काबिज़ हो सकेंगे और फ़ैसले की ताक़त वास्तव में उनके हाथों में आ सकेगी।

जातिगत विभेद, वैषम्य और पार्थक्य का मूल आधार पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली है, जिसमें पुराने ज़माने के दासों-भूदासों-अर्द्धदासों के वंशज आज के नये गुलामों के रूप में – उजरती मज़दूरों के रूप में खट रहे हैं। इन्हीं वंशजों में से एक बेहद छोटी आबादी यदि सफ़ेदपोश होकर ऊपर के पद-सोपान पर चली गयी है तो पुराने सफ़ेदपोशों के वंशजों की एक बड़ी आबादी कंगाल होकर उजरती गुलामों की भारी आबादी में शामिल हो गयी है। इस उजरती गुलामी की बेड़ियों को तोड़ते हुए हमें जातिगत आधार पर कायम पार्थक्य व उत्पीड़न के विरुद्ध भी लड़ना होगा और इन बेड़ियों को तोड़ने के बाद ही जाति-विभेद के प्रश्न को निर्णायक और अन्तिम रूप से हल किया जा सकता है।

रियायतख़ोरी और पैबन्दसाज़ी की मानसिकता से मुक्त होकर दलित-मुक्ति के प्रश्न और समूची जाति समस्या पर इस पूँजीवादी व्यवस्था की सीमाओं का अतिक्रमण करके सोचने पर ही इनके निर्णायक और अन्तिम समाधान की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है। दलितों के लिए राहत के चन्द टुकड़े जुटाने के बजाय, उनमें से कुछ को सफ़ेदपोश बनाकर शेष को झूठी उम्मीद के सहारे लटकाये रहने की बजाय, ज़रूरत इस बात की है कि दलित-मुक्ति की आमूलगामी परियोजना का खाका प्रस्तुत किया जाये। यह आमूलगामी परियोजना जन-मुक्ति की किसी व्यापक क्रान्तिकारी परियोजना के एक अंग के रूप में ही सम्भव हो सकती है।

शताब्दियों से सर्वाधिक व्यवस्थित और सर्वाधिक बर्बर शोषण-दमन के शिकार दलित देश की कुल आबादी के करीब 30 प्रतिशत हैं और इनमें से 90 प्रतिशत ग्रामीण और शहरी सर्वहारा-अर्द्ध सर्वहारा की कतारों में शामिल हैं। इनमें यदि पिछड़ी जाति के ग़रीबों और जनजातियों को भी जोड़ दें तो यह कुल आबादी की आधी से भी अधिक हो जायेगी। भारत में समाजवाद के लिए संघर्ष तभी आगे बढ़ सकता है, जब आबादी का यह हिस्सा सम्पूर्ण जनता की मुक्ति और स्वतंत्रता-समानता की वास्तविक स्थापना की परियोजना के रूप में उसे अंगीकार करे। दूसरी ओर, समाजवादी क्रान्ति परियोजना से जुड़े बिना दलित-मुक्ति का प्रश्न और जाति-विभेद का सम्पूर्ण प्रश्न भी असमाधानित बना रहेगा तथा समाजवादी क्रान्ति को जीवन के हर क्षेत्र में दीर्घावधि तक लगातार चलाये बिना समाज को उस मुकाम तक पहुँचाया ही नहीं जा सकता जब जाति, धर्म या लिंग के आधार पर किसी भी तरह की असमानता या उत्पीड़न बचा ही नहीं रह जायेगा।

जाति समस्या और दलित प्रश्न पर विचार के इसी व्यापक क्रान्तिकारी परिप्रेक्ष्य में हम आरक्षण के प्रश्न को भी देखते हैं और हमारे विचार से भारत के हर परिवर्तनकामी छात्र और नौजवान को इस प्रश्न पर इसी तरह से सोचना चाहिए।

(जून, 2006)

भगत सिंह ने कहा...

"लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन – पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुकसान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी ज़ंजीरें कट जाएँगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।"

"केवल उन किताबों को प्यार करो जो ज्ञान का स्रोत हों, क्योंकि सिर्फ़ ज्ञान ही वन्दनीय होता है; ज्ञान ही तुम्हें आत्मिक रूप से मज़बूत, ईमानदार और बुद्धिमान, मनुष्य से सच्चा प्रेम करने लायक, मानवीय श्रम के प्रति आदरभाव सिखाने वाला और मनुष्य के अथक एवं कठोर परिश्रम से बनी भव्य कृतियों को सराहने लायक बना सकता है।"

- मक्सिम गोर्की

राहुल फाउण्डेशन से प्रकाशित कुछ ज़रूरी पुस्तकें

शहीदेआज़म की जेल नोटबुक	भगतसिंह	रु. 65
भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़		रु. 175
भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति	बिपन चन्द्र	रु. 10
भगतसिंह अनवरत जलती मशाल	राजकुमार राकेश, मनोज शर्मा	रु. 10
इक्कीसवीं सदी में भगतसिंह	रविभूषण	रु. 10
छात्र नौजवान नई शुरुआत कहाँ से करें	आह्वान पुस्तिका-1	रु. 10
कहें मनबहकी खरी-खरी	मनबहकी लाल	रु. 25
ईश्वर का बहिष्कार	राधामोहन गोकुलजी	रु. 15
लौकिक मार्ग	राधामोहन गोकुलजी	रु. 15
स्त्रियों की स्वाधीनता	राधामोहन गोकुलजी	रु. 15
धर्म का ढकोसला	राधामोहन गोकुलजी	रु. 15

विहान आपके बीच आया है एक अँधेरे समय में अँधेरे के बारे में सच्चाइयाँ बयान करते और उजाले की उम्मीदों के गीतों को लेकर

विहान पेश करता है :

उजाले के दरीचे

फ़ैज़ अहमद फ़ैज़, मुक्तिबोध, शशिप्रकाश, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पॉल रॉबसन के क्रान्तिकारी गीत

प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें :
जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ
फोन : (0522) 2786782
विहान, बी- 100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली-110094 फोन (011) 65976788

क्या जुल्मतों के दौर में भी गीत गाये जायेंगे
हाँ, जुल्मतों के दौर के ही गीत गाये जायेंगे।
— बेर्टोल्ट ब्रेष्ट

Side A:
1 शहीदों के लिए — शशिप्रकाश
2 दरबारे-वतन में — फ़ैज़ अहमद फ़ैज़
3 आँधी के झूले पर झूलो — गजानन माधव मुक्तिबोध
4 साथियों! आगे बढ़ो — शशिप्रकाश
5 तोड़ो ये दीवारें — शशिप्रकाश
6 चलो फिर से मुस्कराएँ — फ़ैज़ अहमद फ़ैज़
7 जारी है — सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
8 पैसा — विहान टोली

Side B:
1 सिपाही का मर्सिया — फ़ैज़ अहमद फ़ैज़
2 रहबरे-मुल्को कौम बता — फ़ैज़ अहमद फ़ैज़
3 बीस्तीर्णो दुपारेर — पॉल रोब्सन
4 रउरा सासना के बाटे ना — गोरख पाण्डेय
5 दुनिया के हर सवाल के — शशिप्रकाश
6 इन्तेसाब — फ़ैज़ अहमद फ़ैज़
7 हम मेहनतकश — फ़ैज़ अहमद फ़ैज़
8 युद्धबन्दियों का गीत — शशिप्रकाश
9 इण्टरनेशनल — यूजीन पोतिए

विहान टोली
मुख्य स्वर और इलेक्ट्रिक एवं अकाउस्टिक गिटार — *अभिनव*
स्वर एवं ढपली — *तपीश* तबला — *नवकिशलय*
सहायक स्वर — *पवन, प्रसेन, अजय, लता, योगेश, विजय और गौरव*

कैसेट (90 मिनट) - रु. 60, ऑडियो सीडी - रु. 125
ईमेलः vihaan_disha@rediffmail.com

क्रान्तिकारी नवजागरण के तीन वर्ष

(23 मार्च 2005–28 सितम्बर 2008)

भगतसिंह और उनके साथियों की
शहादत की 75वीं वर्षगाँठ
और जन्मशताब्दी के तीन ऐतिहासिक
वर्षों के दौरान
नये जन मुक्ति संघर्ष की
तैयारी के संकल्प और सन्देश के साथ
क्रान्तिकारी छात्रों–युवाओं की देशव्यापी

स्मृति संकल्प यात्रा

हम सभी सच्चे युवाओं का आह्वान करते हैं !
हम तमाम ज़िन्दा लोगों को आवाज़ देते हैं !!
हम तूफान के अग्रदूतों को आमंत्रित करते हैं !!!

भगतसिंह की वीरता और कुर्बानी से तो पूरा देश परिचित है लेकिन इस देश के पढ़े-लिखे नौजवान तक यह नहीं जानते कि 23 वर्ष की छोटी सी उम्र में फांसी का फन्दा चूमने वाला वह जाँबाज़ नौजवान कितना ओजस्वी, प्रखर और दूरदर्शी विचारक था! यह हमारी जनता का दुर्भाग्य है और सत्ताधारियों की साज़िश का नतीजा है। अब यह हमारा काम है कि हम भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों को जन-जन तक पहुँचाएँ, उनकी स्मृति से प्रेरणा लें और उनके विचारों के आलोक में अपने देशकाल की परिस्थितियों को समझकर नई क्रान्ति की दिशा तय करें और फिर उस राह पर दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ें।

भगतसिंह के विचार क्षितिज पर अनवरत जलती मशाल की तरह हमें दिशा दिखला रहे हैं। अब गाँव-गाँव और शहर-शहर में और तमाम कालेजों-विश्वविद्यालयों में नौजवानों और छात्रों को नये सिरे से अपने क्रान्तिकारी संगठन बनाने होंगे। उन्हें चुनावबाज़ मदारियों का पिछलग्गू बनने से बचना होगा। इसके बाद, जैसा कि जेल की कालकोठरी से युवाओं को भेजे गये अपने सन्देश में भगतसिंह ने कहा था, छात्रों-नौजवानों को कारखानों के मज़दूरों और गाँव की झोपड़ियों तक जाना होगा और तमाम मेहनतकशों को संगठित करना होगा। यही सन्देश लेकर हम इस देश के हर जीवित युवा हृदय तक पहुँचना चाहते हैं।

साथियो! बैठे-बैठे सोचते रहने से तो हर राह मुश्किल लगती है। राह की कठिनाइयों को यात्रा शुरू करने के बाद ही दूर किया जा सकता है। भगतसिंह और उनके साथियों का सपना एक जलता हुआ प्रश्न बनकर हमारी आँखों में झाँक रहा है। उनकी विरासत हमें ललकार रही है और भविष्य हमें आवाज़ दे रहा है। एक ज़िन्दा क़ौम के नौजवान इसकी अनसुनी नहीं कर सकते। हम एक नई क्रान्ति की तैयारी के लिए, एक नये क्रान्तिकारी नवजागरण का सन्देश पूरे देश में फैला देने के लिए आपका आह्वान करते हैं।

दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा की ओर से चलाये जा रहे स्मृति संकल्प यात्रा के पर्चे का अंश

प्रमुख सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-110094 ● 'आह्वान' कार्यालय, संस्कृति कुटीर, कल्याणपुर, गोरखपुर ● डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020 ● 154, ओम बेकरी के सामने, शहीद करनैल सिंह नगर, फेज-3, पखोवाल रोड, लुधियाना